आधार भूमि

(पंजाबी काव्य-संग्रह)

आधार भूमि

(पंजाबी काव्य-संग्रह)

गुरभजन गिल

अनुवाद :

राजेंद्र तिवारी

प्रदीप सिंह

हंस प्रकाशन

नई दिल्ली

प्रथम संस्करण : 2022

ISBN : 978-93-89389-

मूल्य : ₹ 495/-

प्रकाशक

हंस प्रकाशन

(पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स)
बी-336/1, गली नं. 3, दूसरा पुश्ता,
सोनिया विहार, नई दिल्ली-110094
दूरभाष : 9868561340, 7217610640
email : hansprakashan88@gmail.com
www.hansprakashan.com

विक्रय कार्यालय :
4648/21 अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
दूरभाष : 7217610640

टाईप सेटिंग : मुस्कान कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110094

मुद्रक : एस. के. ऑफसेट, दिल्ली

सांस्कृतिक संवेदना की कविता

गुरभजन गिल पंजाबी अदब में जानी-पहचानी शख़्सियत है। वह काव्य कर्म और साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं में निरंतर गतिशील है। वह बुनियादी तौर पर प्रगीतक कवि है जिसकी समूची कविता पंजाबी संस्कृति की मर्यादा के साथ समीपता से जुड़ी है। वह चाहे पंजाबी संस्कृति की अमीर परंपराओं का प्रयोजन सिरज रहा हो, चाहे वह विलुप्त हो रही संस्कृति के प्रति चिंतित हो, चाहे वह समकाल के कार्य-व्यवहार के प्रति अपना प्रत्युत्तर सिरज रहा हो, चाहे वह व्यक्ति विशेष के प्रति अपने भावों की अभिव्यक्ति कर रहा हो, पंजाबी सांस्कृतिक-संवेदना उसके शब्दों में धुन बन कर समाई रहती है। इसी कारण उसकी काव्य भाषा सरल संप्रेषणीय, लोक जीवन के कार्य-व्यवहार के आस-पास वाली रहती है। वह विचारधारात्मक कविता को बौद्धिक काव्य भाषा में गढ़ने के स्थान पर लोक-मर्यादा वाली बोल-व्यवहार की काव्य भाषा में बहुत समर्थ रूप में सिरजता है।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह प्रगीतकता से मुक्त नहीं है परंतु यह नज़्मों का संग्रह है। नज़्म सिरजते वह काव्य कला के लिए प्रगीतकता और लयात्मकता को एक युक्ति बना कर बरतता है। इससे उसका प्रभाव और सौंदर्य अधिक बलशाली हो जाता है। यह शायद पंजाबी मनुष्य के अवचेतन के कारण है कि आज भी अधिकतर पंजाबी में रची जाने वाली वही शायरी अधिक स्वीकृत होती है जो प्रगीतकता और लालित्य के समीप होती है। विचारोन्मुख कविता जो अधिक बौद्धिक भाषा से लबरेज़ होवे, उसका दायरा सीमित ही रहता है। गुरभजन गिल की कविता की संरचना, संबोधन, भाषा और संचार प्रगीतक श्रुति बृत्ति का है। इस काव्य संकलन विविध विचार, विविध स्थितियाँ और विविध शेड्ज़ के बावजूद भी उनकी संरचना और दृष्टि में सांस्कृतिक संवेदना प्रमुख रूप में बनी रहती है।

इस काव्य-संग्रह में कोरोना द्वारा उपजी दहशत, सहम और बेबशी के अलावा समकाल की राजनीतिक स्थिति के साथ-साथ विरासत, माँ, बालपन, औरत, सिक्ख, इतिहास, प्रकृति, किसानी और कुछ व्यक्तियों से संबंधित विभिन्न थीम वाली कविताएँ हैं।

पिछले समय में सबसे अधिक दहशतज़दा कर देने वाली घटना कोरोना महामारी है। इस महामारी ने समूचे विश्व को ही अपनी लपेट में ले लिया है। लाखों की गिनती में लोग मरे हैं। इस महामारी का सच या हकीकत क्या है, इसके बारे में पूरे भरोसे के साथ आज भी कुछ नहीं कहा जा सकता। परंतु इसके भयानक प्रभाव और परिणाम से कोई नहीं बच सका। बड़े स्तर पर आर्थिकता को चोट पहुँची, अनगिनत लोग बेरोज़गार हुए, भुखमरी की स्थिति पैदा हो गई। इसने बड़ी-बड़ी सिरजी अर्थव्यवस्थाओं के भीतरी कमज़ोर पक्षों को उजागर कर दिया और यह प्रमाणित कर दिया इन व्यवस्थाओं में से मनुष्य गैरहाज़िर रहा है। इन व्यवस्थाओं ने मंडी और मुनाफ़े को अहमियत दी परंतु स्वास्थ्य सुविधाओं जैसे प्रबंध नदारद ही रहे। लाखों की तादाद में लोगों को समय पर स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं मिलीं। मुल्कों के मुल्क तालाबंदी कीमार तले आ गए। इस समय पंजाबी तथा दूसरी भाषाओं में बहुत सारी कविताएँ लिखी गई हैं। इनमें से कितनी एक कविता जीवित रहेगी यह तो इतिहास ही बताएगा। गुरभजन गिल ने तमाम कविताएँ लिखी हैं, जो इस महाकारी के कई दृश्य सिरजती हैं।

इस काव्य-संग्रह का दूसरा मुख्य विस्तार राजनीतिक चेतना वाली कतिबाओं का है। पिछले कुछ सालों में समूचे देश की राजनीति का स्वर भी बदला और तेवर भी। भारत अति विविधता वाला देश है। इसकी विविधता की अपनी खूबसूरती भी है परंतु इस विविधता के अपने संकट और समस्याएँ भी हैं। भारत दुनिया का कई पक्षों से अनूठा देश है, जितने धर्म या विश्वास की परंपराएँ और संस्थाएँ इस देश में जन्मीं, फैलीं शायद और किसी दूसरे देश में नहीं। जहाँ यह धार्मिक विविधता के प्रमाण हैं, वहाँ ही इसके मूलवाद में बदल जाने से दूसरे धर्मों या अल्पसंख्यकों के लिए संकट बन जाने के अधिक आसार बन जाते हैं। इसके इतिहास में न भीजाएँ तो भी यह तथ्य स्पष्ट है कि अब तक भारत में सबसे अधिक अन्यायपूर्ण और निर्दोषों के कत्ल धर्म के नाम पर हुए हैं। इसी तरह जाति-पाँति में बँटा समाज भी अनेकों तरह के अत्याचार की मार तले है। पितृ सत्ता के दमन में नारी आज भी अनेकों तरह के दैहिक और मानसिक शोषण की शिकार है। यह अलगाव और भेदभाव जब राजनीतिक रंगत ले लेते हैं तो मानवघाती बन जाते हैं। इनका जीवंत और ख़तरनाक रूप पिछले कुछ सालों में राजनीतिक सत्ता हथिया चुकी है जो विशेष ताकत द्वारा अधिक उग्र रूप में सामने आया है। विश्व आज जहाँ विश्व-संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में है, वहाँ भारत जैसे पहले से बहु-संस्कृति मूलक देश को एक रंगी संस्कृति में पलट दिए जाने के लिए हर तरह का प्रयोग किया जा रहा है। एक देश, एक निशान, एक धर्म, एक संस्कृति, एको-एक व्यवहार आज प्रमुख तौर पर स्थापित

करने के प्रयत्न हैं। इससे भारतीय राजनीतिक प्रबंध वैज्ञानिक, संवैधानिक और धर्म निरपेक्ष होने की जगह अवैज्ञानिक, वर्ण-आश्रम और धार्मिक मूलवाद की नींव पर खड़ा करने की चाहत है। इस चाहत ने विभिन्न विश्वासों वाले लोगों में सहम, डर, दहशत और वहशत भर दी है। इस हिंसक दौर में भाषा भीहिंसक हो गई है। मॉब लिंचिंग, अर्बन नक्सल, देशद्रोही अनेकों ऐसे नए शब्द इस हिंसक वातावरण को ही चिह्नित करते हैं। इस दौर में सबसे अधिक हमला बुद्धिजीवियों, कलाकारों, पत्रकारों, इतिहासकारों पर हुआ है। अभिव्यक्ति की आज़ादी का गला दबा कर एक गैर प्रतिरोधी समाज सिरजा जा रहा है, जो मूक हो और सत्ता के हर प्रवचन को सत्य वचन कह कर स्वीकार करे। ऐसे समय में उन कवियों ने भी राजनीतिक प्रति-उत्तर वाली कविताएँ लिखी हैं, जिनके लिए राजनीति कभी मनभावन विषय नहीं रहा था। दरअसल कविता या कलाएँ तो अपने समय के हिंसक, दरिंदगी और अत्याचारी व्यवहार से दस्तपंजा लेने वाली होती हैं। यह मनुष्य के साथ प्रतिबद्ध होने के कारण अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रवचन बनती हैं। दूसरे, कविता वह ही इतिहास का अंग बनती है जो सत्ता, स्थापन और दमन के व्यवहार के विरुद्ध मानव जीवन की बेहतरी की चाहत से लबरेज़ होती है। गुरभजन गिल के इस संग्रह में बहुत सारी ऐसी नज़्में हैं जो अपने समकाल के दरिंदराना व्यवहार से मुठभेड़ में हैं। इन कविताओं में पता रखा करो, दशहरा, अड़ियल घोड़ा, अजब सरकश देखते, डार्विन झूठ बोलता है, वह कलम कहाँ है जनाब, आदि कविताएँ शामिल हैं।

राजनीति का यह सांप्रदायिक अड़ियल घोड़ा मानवीय परंपराओं को रौंदता, मसलता हर संवेदनशील व्यक्ति को अंदर से हिला देता है तो वह इस अड़ियल घोड़े को रोकने का उपाय करता है। यह उपाय विचारधारक बन जाती है। यहाँ ही गुरभजन गिल की वैज्ञानिक प्रेरणा सिक्ख धर्म बनती है और दृष्टि वह सिक्ख लहर बनती है जो अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध मनुष्यता के लिए शहादत का जाम तक पी गई। सिक्ख दर्शन सकी आस्था का केंद्र भी बनता है और वैचारिक प्रेरणा भी। गुरभजन गिल 'वह पूछते हैं अड़ियल घोड़ा क्या होता है' कविता के अंत में कहता है :

अब भी पूछते हो
ये अड़ियल घोड़ा कैसा होता है?
कीर्तनिए गा रहे हैं
बेड़ा बाँधि न सक्यो बाँधन की वेला
भर सरवर जब उछले तब तरण दुहेला
इससे पहले कि ये घोड़ा सब कुचल जाए

इसे नकेल डालो और पूछो
तेरा मुँह
अठारहवीं सदी की ओर क्यों है?

'पहली बार' कविता भी एक राजनीतिक संवेदना से संबंधित करके ही पढ़ने की जरूरत है जो पंजाब की कृषि दुर्दशा और फिर अनूठे जनांदोलन से जुड़ी है। यह कविता पहली बार उगे अलग किरणों वाले सूरज की निशां देही करके भविष्य में उठने वाले सैलाब की ओर संकेत करती है। जन चेतना में राजनीतिक चेतना का प्रवेश पंजाब के इतिहास में गुणात्मक मोड़ है जो आम जन को व्यवस्थाई दैत्यों के विरुद्ध जागरूक कर रहा है।

गुरभजन गिल के इस काव्य संग्रह में औरतों और बच्चों से जुड़े अनुभव संबंधी कविताएँ परंपराओं से हट कर हैं। यह कविताएँ महज औरत से भावुक रिश्तों के साझे की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि सांस्कृतिक रूप में औरत की उपस्थिति और हस्ती से जुड़े सच की कविताएँ हैं। माँ से संबंधित कविताओं में सांस्कृतिक संवेदना बलवती है। यह कविताएँ पाठक को औरत के प्रति संवेदनशील बनाने वाली हैं जिनमें पंजाबी संस्कृति की आदर्श परंपरा भी समांतर चलती जाती है और औरत का स्वप्न संसार भी उदित होता जाता है।

औरत से संबंधित कविताओं में से वह अतीत जाग उठता है जो पंजाबी संस्कृति के शिल्पकारी पड़ाव से जुड़ा है। शिल्पकारी का मुँह ग्रामीण जनजीवन की ओर होता है, उद्योग का मुँह शहरी-जीवन की ओर। इन कविताओं में अतीत के प्रति विकलता है क्योंकि अतीत में मनुष्य केंद्रित कद्रों-कीमतें अर्थ रखती हैं। वर्तमान के प्रति शिकवा है क्योंकि वह मंत्री और मुनाफे की कद्रों-कीमतों के प्रति प्रतिबद्ध धंधेबाज़ मनुष्य को सभ्य मनुष्य के तौर पर स्थापित करता है। इन कविताओं में अतीत और वर्तमान का तनाव है। इस संबंधी 'नंदो बाज़ीगरनी' कविता के एक ही वृतांतक ब्योरे का उल्लेख काफी है :

नंदो बताती
भई हमारे बाज़ीगरों की अपनी पंचायत होती है सरदारो।
हम तुम्हारी कचहरियों में
नहीं घुसते, चढ़ते।
हमारे बुजुर्ग इनसाफ़ करते हैं,
फैसले नहीं
तुम्हारी अदालतों में
इनसाफ़ नहीं, फैसले होते हैं।

इस संग्रह की कुछ कविताएँ वह हैं जो व्यक्ति, घटना, संकट, समस्याएँ, संघर्ष या विरासती मोह की जगह अहसास और शायराना कैफ़ियत की नज़्में हैं : कविता लिखा करो, परमाणु के ख़िलाफ़, सूरज के साथ खेलते, कंक्रीट के जंगल झाड़, मैंने उससे पूछा, दीवार पर लिखा पढ़ो, बच्चे कोरी स्लेट नहीं होते, पास से गुज़रते हमउम्रों, सितार वादन सुनते आदि नज़्में मन-मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ती हैं। प्रगीतक गोलाई की यह नज़्में अहसास और काव्यकला का भरपूर प्रमाण हैं। एक कविता का सौंदर्यानंद लेते ही इसका तीखा अहसास होता है :

ताज़दार को कविता ही कह सकती
बाबर तू जाबर है
राजा तू बाघ है
मुकद्दम तू कुत्ता है
कविता लिखा करो।
शीश की फीस देकर लिखी कविता
वक्त साँसों में रमा लेता है।

गुरभजन गिल का यह काव्य संग्रह विभिन्न शेड्ज़ और रंगों का काव्य-संग्रह है। यह प्रगीतक और लयात्मक अंशों से भरपूर पंजाबी संस्कृति की संवेदना वाला है। यह गुरभजन गिल के काव्यक विकास का सूचक भी है और पंजाबी कविता के घेरे को विस्तृत भी करता है। इस संग्रह से प्रोफेसर गुरभजन गिल का काव्य-व्यक्तित्व और गहरा होता है।

सरबजीत सिंह (डॉ.)
प्रोफेसर एवं चेयरमैन
पंजाबी अध्यन स्कूल
पंजाब युनिवर्सिटी, चंडीगढ़

अनुक्रम

सांस्कृतिक संवेदना की कविता	5
कविता लिखा करो	13
मिल जाया कर	19
युद्ध का आख़िरी दिन नहीं होता	22
परमाणु के ख़िलाफ़	25
अजब सरकस देखते हुए	29
वह कलम कहाँ है जनाब	32
कंक्रीट के जंगल झाड़	35
मेरी माँ	37
मजदूर दिहाड़ा (दिवस)	39
आसिफा* तू न जगा	40
पता रखा करो	44
जिनके पास हथियार हैं	48
रंगोली में रंग भरते बच्चे	50
बच्चे नहीं जानते	52
उनसे कहो	54
शबद–अबोल	56
शीशा सवाल करता है	58
लम्बी उम्र इकट्ठे	60
कोरी स्लेट नहीं होते बच्चे	62
पास से गुज़रते हमउम्रों	66
साईं लोग गाते	69
थोड़े से पैसों में	72
मैंने उससे पूछा	76
दीवार पर लिखा पढ़ो	79

सितार वादन सुनते हुए 81
सूरज के साथ खेलते 83
आशीष* 86
बहन नानकी भाई को तलाशती 88
अब अगली बात करो 90
पहली बार 92
नेता जी ने मुझसे पूछा 96
वह कुछ भी कर सकते हैं 99
आ गई प्रभात फेरी 101
मिलो तो यूं मिलो 104
धर्म परिवर्तन 106
परवेज़ संधू 108
अब दुश्मन ने भेष बदला 110
किधर गए असवार 112
दर्दनामा 114
शीशा 117
बहुत याद आती है लालटेन 119
दीपिका पादुकोण के जेएनयू के जख़्मियों को मिलने पर 122
काला टीका 124
पत्थर! तू भगवान बनकर 126
बिगड़ता जाता वातावरण 127
डार्विन झूठ बोलता है 129
जाग रही है माँ अभी 130
नंदो बाजीगरनी 133
जो बच्चा बोलता तो 138
बापूजी कहते थे 139
सूरज की जात नहीं होती 143
भाशो जब भी बोलता है 146
पता हो तो बताना 151
हमारी चिंता न करना 155
आप भी अंधे हैं 158

कविता लिखा करो

कविता लिखा करो
दर्दों को धरती मिलती है।
कोरे पन्नों को सौंपा करो
रूह का सारा भार।
यह लिखने से
नींद में खलल नहीं पड़ती।

तुम्हारे पास बहुत कुछ है
कविता जैसा
सिर्फ स्वयं को अनुवाद करो
पिघल जाओ सिर से पैरों तक
आहों को शब्दों के परिधान पहनाओ।

और कुछ नहीं करना
झांझरों को आज से बेड़ियाँ मानना है
गहना-आभूषण
सुनहरे चुग्गे की तरह।
मिट्टी का बुत
बेटा या बेटी नहीं बनता है
कविता लिखा करो।

कविता लिखने से
पत्थर होने से बचा जा सकता है
आँखों में आँसू
आएं भी तो

समुद्र बन जाते हैं।
चंद्रमा मामा बन जाता है
और अंबर के सारे तारे नानका मेल।

दरारों के मध्य से लाँघती
तेज़ हवा का नाद सुनाई देता है
कविता लिखने से
क्यारी में खिले फूल, बेल-बूटे
कविता की पंक्तियाँ बन जाते हैं।
बहुत कुछ बदलता है
कविता लिखने से।

फागुन चैत महीनों की
प्रतीक्षा बनी रहती है
पाँचवाँ मौसम प्यार कैसे बनता है
कविता समझाती है पास बिठा कर।
तपती धरती पर
पड़ी पहली बूँदे
उतनी देर
कविता जैसी नहीं लगती
जब तक आप
कविता नहीं हो जाते।

लड़कियों को
बेटियाँ समझने समझाने का
नुस्खा है, कविता लिखा करो।
रंगों से निकटता बढ़ती है।
सब रंगों के स्वभाव
जान लेता है मन।
कविता लिखा करो।

स्वयं से

लड़ने की युक्ति सिखाती है
कविता
हमें बताती है
कि सूरज का घर
सहज और बहुत समीप होता है।

सब्र से जब्र का क्या रिश्ता है
तपता तवा कैसे ठर्रता है
तपी तपीश्वर और आस्थावान
शब्द सृजक के बैठते ही
रावी किस तरह आगोश बदलती है।

अक्षर से शब्द और उससे आगे
वाक्य तक चलना सिखाती है
कविता शब्दों का वेश पहनती
ठुमक ठुमक चलती
स्वयं ही कब्ज़िया लेती है मन के द्वार
इत्र फुलेल का फाहा बन जाती
रोम रोम महकाती है
शब्दों की महारानी।
कविता लिखा करो।

हँसी की खनक में घुँघरू
कैसे छनकते हैं लगातार
सरूर में आई रूह
गाती है गीत बेशुमार
कैसे चंपा मन का खिलता है
राग इलाही कैसे छिड़ता है
समझने के लिए बहुत ज़रूरी है
कविता लिखना।
कविता लिखने से
पढ़ने की युक्ति आ जाती है।

समझने समझाने से आगे
महसूस करने से
बहुत कुछ बदलता है
कविता खिले फूलों के रंगों में से
कविता कशीदना सिखाती है।
रिक्त स्थान भरने हेतु
कविता रंग बनती है।
बदरंग पन्नों पर
कविता लिखा करो।

कविता लिखने से काले बादल
मेघदूत बन जाते हैं
शकुंतला का दुष्यंत के लिए कलपना
महाकाव्य बन जाता है।
दर्दों का
भीतर की ओर बहता खारा दरिया
दर्दमंद कर देता है
कविता लिखने से।

कोई भी दर्द पराया नहीं रहता
ग्लोब पर बसा सारा आलम
चींटियों का घर लगता है
कुरबल कुरबल करता।
सिकंदर खाली हाथ पड़ा
कवियों से ही बातें करता है।

ताज़दार को कविता ही कह सकती
बाबर तू जाबर है
राजा तू बाघ है
मुकद्दम तू कुत्ता है
रब्बा तू बेरहम है।
कविता लिखा करो।

शीश की फीस देकर लिखी कविता को
वक़्त साँसों में रमा लेता है
थोड़ा थोड़ा बाँटता रहता है
सदैव निरंतर
जैसे ओस पड़ती है।
कविता लिखा करो।

कविता साथ साथ चलती है
आगे आगे लालटेन बन कर
कभी अँधेरी रात में जुगनू बन जाती
आशाओं का जलता बलता
चौमुखी चिराग।
शब्दों के सहारे
दरिया, पहाड़, नदियाँ, नाले
फलाँग सकते हो एक ही छलांग में।

विज्ञानियों से पहले
चाँद पर सपनों की खेती
कर सकते हो बड़ी सहजता से।
सूरज से पार
बसते यार से मिल कर
दिन निकलते लौट सकते हो।
कविता लिखा करो।

बच्चा हँसता है
तो खुल जाते हैं
हज़ारों पवित्र पुस्तकों के पन्ने
अर्थों से पार लिखी
इबारत-सी किलकारी में ही
छिपी होती है कविता।

यदि तुम बेटी हो तो

बाबुल के नेत्रों में से कविता पढ़ो
लिखी लिखाई
अंनत पृष्ठों वाली विशाल किताब
यदि तुम पुत्र हो तो
माँ की लोरियों से औसिआँ तक
कविता ही कविता है
बाढ़ के पानी-सा मीलों तक
आसरे के साथ नन्हे नन्हे कदम रखती
मेरी पौत्री आशीष-सा
आप भी
कविता के आँगन में चला करो।
मकान घर इस तरह ही बनते हैं।
कविता लिखा करो।

(औसिआँ=एक युक्ति जिसमें लोग ज़मीन पर रेखाएं खींच कर किसी बात का पता लगा लेते हैं)

मिल जाया कर

इस तरह ही मिल जाया कर
जीवित रहने का
भ्रम बना रहता है।
फ़िक्रों का चक्रव्यूह टूट जाता है
कुछ दिन अच्छे गुज़र जाते हैं
रातों की नींद नहीं उचटती
मिल जाया कर।

शाम सवेरे चलती है रहट
अच्छी लगती है
रहट की भरी बाल्टियों की कतार।
सुबह शाम के बीच
बचपन में सूरज देखना
याद आता है।
मिल जाया कर

तुझे याद कर इस ऋतु में
बहुत कुछ जागता है
मर्म में
सौंधी मिट्‌टी की महक
जागती है
चार चौफेरे कीट बोलते
मेढकों के फूले हुए चेहरे
पीपल के पत्ते पर
लटकते जल बिंदु

बरगद के पत्तों के बल पर
तलते गुलगुले
रिंधती खीरें आवाज़ देतीं
निर्वस्त्र रूह लेकर
बारिश में भीगना चाहता हूँ
मिल जाया कर।

तुझसे मिले स्वप्न भी
दस्तक देने आ जाते हैं।
यही स्वप्न तो मुझे जीवंत रखते हैं।
रंगों की डिब्बियाँ
खोजने चल पड़ता हूँ जागते ही।
स्वप्नों में रंग भरने के लिए
उँगलियाँ तूलिका बन जाती हैं।
नक्श उभरते हैं
दो चार लकीरों के साथ।
मिल जाया कर।

चौगिर्द में मशीनी-से रिश्ते
सेवँइयाँ बटने वाली यंत्र-सी।
मैदा ठूसे जाओ
सेवँइयाँ उतारे जाओ।
दरिया की लहर-सा
अलौकिक नृत्य दिखाता है भलेमानुष
तेरे आने से।

द्वार खड़कता है तो मन जागता है
गाढ़ी नींद टूटती है।
नींद का खुलना बहुत ज़रूरी है
मन की रखवाली के लिए
मिल जाया कर।

शब्द अँकुरते हैं कविता की तरह
तरबें छिड़ती हैं सरगम-सी
साज़ बजते हैं बिन बजाए
अनहद नाद गूँजता है
मरदाने की रबाब याद आती है।
सच यार! मिल जाया कर।
बहते पानी में
ताज़गी बनी रहती है
इनसान का चित् खिलता है।
दूषित पानी में कौन उतरता है?
मिल जाया कर।

(मरदाना=गुरु नानक के शिष्य जो उनके साथ ही रहते थे और रबाब बजाते थे।)

युद्ध का आख़िरी दिन नहीं होता

दशहरा युद्ध का
आख़िरी दिन नहीं
दसवाँ दिन होता है।

युद्ध तो जारी रखना पड़ता।
सबसे पहले
अपने ख़िलाफ़
जिसमें सदियों से
रावण डेरा डाले बैठा है।
तृष्णा का स्वर्णमृग छोड़ देता है
रोज़ सवेरे
हमें छलावे में लेता है।

सादगी की सीता मैया को
रोज़ छलता है
फिर भी धर्मी कहलाता है।

सोने की लंका में बसते
वह जान गया है कूटनीति।
हर व्यक्ति का मूल्य लगाता है।
अपने दरबार में नचाता है।
औकात मुताबिक
कभी किसी को, कभी किसी को
बांदर बनाता है
बराबर की कुर्सी पर बिठाता है।

भ्रम डालता है।

सेठे की तीरों से
कहाँ मरता है रावण?
जैड प्लस सुरक्षा छत्रधारी।
अबे तबे बोलता है
घर नहीं देखता,
बाहर नहीं देखता
अग्नि अंगार मुँह से निकालता
हमारे पुत्र पुत्रियों को
युद्ध के लिए ईंधन की जगह बरतता।
दशहरा युद्ध का आखिरी दिन नहीं
दसवाँ दिन होता है।

रावण को
तीन सौ पैंसठ दिनों में से
सिर्फ़ दस दिन ही
दुश्मन न समझना
पल पल जानना और पहचानना।
कैसे चूस लेता है हमारा रक्त
सोते सोते
घोल कर पी जाता है
हमारा स्वाभिमान आत्मगौरव और
और बहुत कुछ।

आर्य द्रविड़ों को
धड़ों में बाँट कर
अपना हित साधता है
युद्ध वाले नुक़्ते भी
ऐसे समझाता है।
बातों का बादशाह
पास से कुछ न लगाता है।

रक्षक बन कर जेबें खँगालता है।
वतनपरस्ती के भ्रमजाल में
भोली मछलियाँ फँसाता है
तर्ज़ तो कोई और बनाता है
पर धुन का बहुत पक्का है
हर समय एक ही गीत अलापता
कुर्सी राग गाता है।

पूरा समझौतापरस्त है
भगवान को भी
बातों में भरमाता है
ऐसा उलझाता है
पत्थर बना कर उसको
मूर्ति सा सजाता है।
बगुला भगत पूरा
मनचाहा फल पाता है।

दशहरा युद्ध का आख़िरी दिन नहीं
दसवाँ दिन होता है।

परमाणु के ख़िलाफ़

यह कोई जंग नहीं थी
सोए शहरों में
जागते सपनों के ख़िलाफ़।
सदैव के वैर का शिखर था।
नस्लकुशी की गिनी-गुथी साज़िश थी।
नागासाकी न हिरोशिमा मिटा
लाशें और मलबा लट लट जला
फिर से जागा जापान।

दैत्य की छाती पर चढ़ बैठा और गरजा!
अब बोल!
हम जिंदा हम जागते।
हमारे बिन
एक कदम चल कर दिखा।
तेरी नब्ज़ अब हमारे हाथ में है
बड़के अहंकारिए!

तेरे पास सरमाया है।
हमारे पास सिर हैं।
निरंतर जागते, सोचते,
चलते सपने हैं।
तेरे पास सिर्फ़
मौत का बेइंतिहा सामान है
और बता?
तेरे पास क्या है हैकड़बाज़!

मौत की पुड़िया बेचता है
गली गली मुहल्ले मुहल्ले सहम कर
बच्चे छिप जाते हैं
तेरा कुद्रूप चेहरा देख कर।
आदमखोर!
तेरी कोई नहीं प्रतीक्षा करता।
दो बार दाँत गड़ाए हैं तूने हमारे
दुधमुँहे बच्चों, मासूम बचपन की मुस्कानों पर।

आतिशबाज़।
तूने मासूम फाख़्ताओं के घोसले को
अंडों, बच्चों, उड़ानों समेत
अग्निभेंट किया है
सद्य कोंपलित पत्तों, अंकुरों को
मटियामेट किया है।
भाँति कुभाँति के हथियार
रक्त-नद में तैरते फिरते
लानत है ज़ालिम मछेरे!
जाल में मुल्कों के मुल्क फँसाता
अपनी दग्ध भाषा पढ़ाता सिखाता
विपरीत राह में डालता।

परमाणु की छाँव में
प्राणी परिंदे नहीं बैठते।
मौत ही तांडव नृत्य करती है
दौलतों के अहंकारित अंबार
किसी के लिए अन्न का कौर नहीं
भय का मुकाम बनते हैं।

पहले तू फौज़ें चढ़ाता था
तो सरहदें काँपती थीं।
अब पूरा ग्लोब काँपता है।

परमाणु के अहंकार में अंधा मस्ताया हाथी है।

बेलगाम घोड़ा सपने लताड़ता
पवन में भर देता है
मौत का ज़हरीला सामान
गेहूँ के दाने में लगे कीट-सी
सो जाती है कायनात
तुझे चितवते।

तूने ही छितराए थे सुबह तड़के
स्कूली बच्चों के बस्ते।
कामगारों के दोपहरवाली रोटी के डिब्बे।
चौके में गूँथे आटे में ज़हर डाला।
उड़ाए कोठार सहित अन्न भंडार।

हवा में उड़ाए थे परखच्चे करके तुंबे।
सूरज ने सुना तेरी रावणी हँसी।
देखा तेरा जब्र और धरती का सब्र।

माथे पर कालिख का टीका,
सदियों तक नहीं पड़ता फीका।
लानतिए!
मारक राग गाते
अंबर में चीलें घूमतीं
उड़नखटोला बन कर।

जापान को छोड़,
पूरा विश्व नहीं भूला आज तक
मौत का जब प्रलयंकर अंडा फूटा
बिछ गया शोक पूरी धरती पर
अंबर काला स्याह पड़ा
दर्दमंदों की आहों से।

पिघल गए समूचे शहर
झाँवा पत्थर हो गए।
पर पुनः जागे
जगे और प्रकाशस्तंभ बनें
तेरे सामने कलमुँहे!

तुझे भ्रम था,
लाशों के अंबार देख डोल जाएँगे
पहाड़ जैसे हौसले।
तू फिर भभका, बरसा तेज़ाब
मौत फिर घर घर घूमी,
जीवित जीव तलाशती।
हार गई मौत बुलंद हौसले के द्वार।
लोहा पिघल कर फौलाद बना
लोहे के मर्द बने सिरजनहार।
पिघली जानें इतिहास की किताब बनीं।

मुँह मुँह न रहे
नाक उधड़ कर विकृत हुई
ख़ून नसों में तेज़ दौड़ा
पहले से बहुत तेज़!
आँखें चमकीं,
माथे का तीसरा नेत्र प्रचंड हुआ।

परमाणु युद्ध के पहले पन्ने ने,
सबक दिया पूरे ब्रह्मांड को।
पिकासो के चित्र वाली
फाख़्ता के चोंच में पकड़ी जैतून की पत्ती,
न मुरझाए कभी।
वह ज़ालिम मौत का उड़नखटोला
लौट कर आए न कभी।
×××

अजब सरकस देखते हुए

अजब सरकस देख रहे दोस्तों!
शहीद पूछते हैं!
हमने कुर्बानियाँ इसलिए दी थीं,
कि फिरंगियों की जूती चाटने वाले परिवारों के फरजंद,
उल्लसित नृत्यरत हों,
और आप चुप रहो।

लोकतंत्र के यह अर्थ,
किस शब्दकोश में से तलाशिए
कि टैक्स के पैसों से सुरक्षा दस्तों के लिए
तनख्वाहें बनती रहें और वे करते रहें
बदहवास व्यंग्यबाज़ों की रखवाली।
बेलगाम अड़ियल घोड़े,
हमारी हरी-भरी फसल चरें
जो कोई उन्हें भगाए या बरजे तो
उसे ही ग्रास बनाएँ।

गधे, घोड़े, हाथी और लंगूर
करतब दिखा रहे हैं।
जोकर गुलाटी मार मार
उपहास्यास्पद हरकतों में
लगे हैं दिन रात।

गलियों में लड़तीं
कूड़ा करकट उठाती

ग्रामीण बहन बेटियों से भी टेढ़ी ज़बान।
दीन न ईमान पशु न इनसान।
कुर्सीधारी देखने को भगवान।
वैसे करतूती हैवान।
दुख सुख के भागीदार
हमसे कीमत वसूलें
जबरन दान माँगते बाबर के।

हमें टुकड़ों घड़ों में काट कर
आपस में हँसते बंद कमरों में।
स्वयं समधियाना और याराना पालते!

हद हो गई यार!
पढ़ना लिखना न जानने वाले
आज हमें बताते हैं भैंस बड़ी होती है अक्ल से।

उल्टी गंगा बहती देखो!
कुर्बानी के पुंज बनते
भाँति भाँति के दर्शनीय घोड़े।
मँहगे बादाम खा खाकर जुगाली करते
हमारे लिए स्वप्न संसार सिरजते
अपहुँच भ्रमजल।

हमारे स्कूल और अस्पताल रोते हैं
इनकी जान को छाती पीट रोते
काम के लिए तरसते माथे
अर्ज़ियाँ लिखते हाथ
रातों रात मुक्कों में तब्दील नहीं होते।

नौकरशाही बेलगाम, कर्मचारी बहानेबाज़
लूटतंत्र की भागीदार सरकार
कानून झाँकते हैं टुकुर टुकुर

यदि मुझे बरतना ही नहीं था
तो बनाया ही क्यों था?
सारी रात गँवाई, औलाद अंधी जायी।

कैसी रामलीला है, नायक मिलता नहीं
खलनायकों की बाढ़ में
बजता फिरता है
हूटर आदमबो आदमबो करते।

राज करती टोली को
उल्लुओं की न्यारी नस्ल गँवाने की चिंता है।
आदमी कुत्तों की रखवाली कर रहे।
मृत पशु निस्तारण स्थल पर पहरेदारियाँ।

अजब निज़ाम है
अपनी ज़िद पूरी करता
हमें कुत्तों से नुचवाता
फिर हमें समझ में क्यों न आता।

सहमी सहमी बेटी बिटानियाँ
पूछती हैं, वह महफ़िल किधर गई
जहाँ बोलियों के गीत छिड़ते थे।
भाइयों पर गर्व करके
मैं अकेली खेत को जाऊँ।

घर घर गहरे आर्तनाद करती
दीवारें पूछती हैं
इस सरकस को हमारे गाँव से
डेरा कब उठाना है।
मुक्तिदाताओं!
जो तुम्हें पता लगे तो बताना।
×××

वह कलम कहाँ है जनाब

वह कलम कहाँ है जनाब
जिससे शूरमे ने पहली बार
इनकलाब जिंदाबाद लिखा था।

शब्द अंगार बने
ज़ालिम की नज़रों में घातक हथियार बने
निर्बलों के यार बने
नौजवानों के माथों में
सदैव को ललकार बने।

वह जानता था
कि पशु जैसे लाल कपड़े से डरता है।
अँधेरा जुगनुओं से
हाकिम भी शास्त्र से घबराता है।
शस्त्र को वह क्या समझता है?

शस्त्र के ओट में तो
लूटना कूटना दोनों काम आसान।
स्वयं बनो महान।
कलम को कलम करना मुहाल
अँकुरती है बार बार।
कोंपलों से टहनियाँ फिर कलमें
अखंड प्रवाह शब्द-सृजन का।

कहाँ है वह पन्ना

जिस पर बाप किसान सिंह के ताबेदार पुत्र ने *
लिख भेजा था।
मेरी जान के लिए
लाट साहब को कोई
अर्ज़ी-पत्र न डालना बापू।
मैं अपनी बात स्वयं करूँगा।
जिस मार्ग पर चला हूँ
अपनी होनी स्वयं बरूँगा
वकालत ज़लालत है
झुक गोरों के दरबार।
झुकना न बाबुला
टूट जाना, पर लफना न कभी।
* शहीद भगत सिंह

कहाँ है वह किताब?
जिसका पन्ना मोड़ कर
इनकलाबी के साथ रिश्ता जोड़ कर
शूरमे ने कहा था
बाकी इबारत
फिर फिर तब तक पढ़ता रहूँगा
जब तक नहीं चुकती
गुरबत और ज़हालत।
करता रहूँगा चिड़िया की वकालत
मांस नोचते बाज़ों के ख़िलाफ़
लड़ता रहूँगा।
युद्ध करता रहूँगा।

कहाँ है वह पगड़ी?
जिसको सँभालने के लिए चाचा अजीत सिंह ने
खेतों-वनों को जगाया था
जाबिर हुकुमतों को लिख कर सुनाया था
धरती हलवाहक की माँ है।

अब शूरमे का पिस्तौल सौंपकर
हमसे कहते हो
तालियाँ बजाओ खुश होओ
लौटा दिया है हमने शस्त्र।
पर हम यूं नहीं बहलते।

शूरमे की वह कलम तो लौटाओ
वह पन्ना को दिखाओ!
जिस पर अंकित है लाल लौ वाला
मुक्ति मार्ग का नक्शा।

प्रकाशित जागते माथे के पास
पिस्तौल बहुत बाद में आता है
दीना कांगड़ से जफ़रनामा बोलता है

चूँ कार अज़ हमा हीलते दर गुज़श्त।
हलाल अस्त बुरदन ब शमशीर दस्त।

अर्थात् हारते जब सब उपाय
ठीक हथियारों की राह।

पर शूरमे ने सब इबारत
कलम से लिखी
आप वही पन्ना उठाए फिरते हो
जो तुम्हारे हित में है।
मुक्तिओं का सूरज तो
ज्ञानभूमि सींच कर
अपना आपा धुन कर
माथे में से उगता है।
हक़ इंसाफ़ के लिए
रात दिन लड़ता है।
× × ×

कंक्रीट के जंगल झाड़

धरती गीत सुनाए
खुद लिखती तर्ज़ बनाती
बिन साज़ों के गाए।
सुन सकता है फूलों से
बंदा यदि चाहे।

आग का गोला चौबीसों घंटे
दहकते बोल अलावे।
सूरज तपता तप कर भी
रौशनियाँ बरतावे।

चंद्रमा की मधुर चाँदनी
क्या क्या रूप दिखाए।
प्रथमा का चाँद तनिक-सा
पूरा हो लोपित हो जाए।
तारों से बातें करके
लाखों कथा सुनाए।

सागर से लेकर जल कण
अंबर प्यास बुझाए
धरती दरकी देख पपीहा
जाने क्या कुछ गाए।
मेघदूत बन धरती पर
बादल वर्षा कर जाए।

कुदरत हर पल कण कण नृत्यरत
सुर संग ताल मिलाए।
कत्थक कथा सुनाते पत्ते
हमको समझ न आए।
बेकदरों के आँगन में
खुशबू कैसे आए।
कंक्रीट के जंगल-झाड़
आजकल शहर कहाए।
×××

मेरी माँ

मेरी माँ को
स्वैटर बुनना नहीं आता था
पर वह रिश्ते बुनना जानती थी।
माँ को तैरना नहीं आता था
पर वह तारना जानती थी।

सरोवर में घुसा कर कहती
डर न, मैं तेरे साथ हूँ।
अब भी जब कभी ग़म के सागर या
मन के बहाव में बहने लगता हूँ
तो माँ डूबने नहीं देती।

मरने के बाद अब भी मेरे पास आ खड़ी होती
मेरी आँखें पोछती और कहती,
तू मेरा पुत्र है और तेरी आँख में आँसू?

यदि मेरा पुत्र है तो
यह अश्रु न बहा।
कोई बेगाना नहीं
पोछता बाहर से आकर।
स्वयं ही उठना पड़ता है, गिर कर।

मेरी माँ को उड़ना नहीं आता था
पर हमें सुबह शाम
सपनों के पंख लगाती

और अनंत अंबर में उड़ाती।
मेरी माँ को माँगना नहीं आता था
बाँटना ही जानती थी।
घर की दरारों दराज़ों में पोटलियों के भीतर
रहमतें बाँध कर छिपाए रखती।

माँ के पास कितना कुछ था।
नहीं के अलावा, और सारा कुछ।
माँ ऊड़े * को जूड़े से पहचान कर अक्सर कहती
पुत्र इसका पल्ला न छोड़ना।
यही तारनहार है।
शाम को कुसमय घर लौटने के कारण
वृद्धावस्था में भी वह
चारपाई पर लेटी लाड से
अपने पास बुलाती।
मुझे हल्के हाथ से
मेरे पुत्र पुनीत के सामने
मेरी रंगी हुई दाढ़ी पर
हल्का-सा हाथ फेरती और कहती
अब तो सुधर जा तेरा बेटा बराबर का हो गया।
यदि कल यह भी तेरी तरह करेगा
तो क्या करेगा?
आज के दिन चली गई दूर बहुत दूर
बैशाखी वाले दिन गुलगुले, मिठाई, नमकीन मट्ठियाँ
बनाती थी बड़े स्वादिष्ट।

अब जब कभी कढ़ाही चढ़ती है
सरसों का तेल खौलता है
तो बहुत याद आती है माँ।
×××

* ऊड़े : पंजाबी वर्णमाला का प्रथमाक्षर जिसके सिर पर जुड़ा-सा लगा होता है।

मजदूर दिहाड़ा (दिवस)

मजदूर का
कोई दिहाड़ा नहीं होता
दिहाड़ी होती है।
टूट जाए तो
ख़ाली पीपा रोता है।
परात बिलखती है।
तवा ठर्रता
आहें भरता है।
दिहाड़ी टूटने से
आदमी टूट जाता है।

ख़ाली पेट नींद से
आँखें पूछती हैं
कब आएगी?
जल्दी आ।
सवेरे फिर
दिहाड़ी पर जाना है।
दिहाड़ी नहीं
मजदूर का सपना
टूटता है जनाब!
दिहाड़ी टूटने से।

आसिफा* तू न जगा

आसिफा तू न जगा!
सोने दे हमें अभी।
खलल न डाल निद्रा में
क्यों भूल गई है मस्जिद बाँग देनी।
गुरुद्वारे से वाक् क्यों सुनाई देता नहीं।
मंदिरों में देवता घड़ियाल चुप हैं।
लगती है तू बहुत बड़ा धर्मसंकट
वर्जित जीभों के सम्मुख।

बेचारा तेरा बाबुल
तुझे खोजता फिर रहा है।
धर्मशाला की दहलीज़ से लौट आया है।

वहाँ तू जाती नहीं!
क्या पता था उसके भीतर जाकर तू लौटी नहीं।
बन गई है पत्थरों के बीच एक मूरत।
जागती न ही जीवित शक्ल सूरत।

जा री बेटी! मरने के बाद
हमारी आवश्यकताओं में तू
शामिल नहीं हुई अभी।
न तू भारत मात है।
न गऊ की जात है।

* कठुआ (जम्मू) की मासूम कन्या जिसके साथ दरिंदों ने बलात्कार करने के बाद मार डाला।

क्यों बचाइए तेरी चुन्नी?
न तू अभी वोट है
हमारी सूची में अभी तक
तू चिड़िया न बोट[1] है।
आसिफा तू जिस्म है मासूम यद्यपि,
पर तू है भोग्या दानवों के ख़ातिर।

मरने के बाद आँसू बन कर
तू किसी कविता में कुछ दिन
बहुत चीखेगी ज़रूर।

तेरे आगे तेरे पीछे
आसिफ़ा यद्यपि मलाला,
किरनजीतें धक्के खाती हैं।
हुक्मरानी ने नशे में
हमारी यह गाढ़ी नींदें
बेटी यूं न खुल पाती हैं।

यह जो लड़का है पंजाबी चित्रकार
मैंने देखा चित्र तेरा बना रहा है।
सुर्ख हाथों से ठप्पे
कोरी कैनवास पर लगा रहा है।
अंधों के देश में
गुरुप्रीत क्या इशारे कर रहा है।
गूँगों की जीभ पर वर्जनाएँ
बोलते नहीं बेज़बान।
बहुत बड़ा इम्तहान।
चीख न कराह, सोने दे हमें अभी।

1. चिडिया के पंखहीन शिशु।

मंदिरों के घंटे यदि शांत हैं।
देवियों को शर्म नहीं।
देवते आँखों पर पट्टी बाँध बैठे,
हमें भी तू न बुला।
सपनों में रोती,
मासूम बिटिया लौट जा।

अभी चुनावों में शेष है समय।
तेरी व्यथा उस समय
ज़रूरत मुताबिक फिर गढ़ेंगे।
चुनाव के मैदान में जब लड़ेंगे।
आँखों से
मगरमच्छी आँसू बहाने के बाद
हिंदू मुस्लिम रंग में डुबोएँगे तेरी व्यथा।
चहुँ ओर पसर जाएगी सियासत की कथा।

आसिफा तू न जगा, सोने दे हमें अभी।
नींद में खलल न डाल,
रात के आगोश में सूरज न जगा,
मुझे नहीं उठना अभी।

आग अभी तो जली केवल कठुए,
जलाए स्वर्ग के द्वार।
न आई बेटी अभी हमारे द्वार।
धर्म और इख़लाक हैं सोए अभी।
बोटियों को नोच रहे कुत्ते अभी।
चोरों के हमराज़ हुए पहरेदार।
फर्ज़ करके दरकिनार।
होशियार! ख़बरदार!

कच्ची नींद से हमें न जगा।
रात के आगोश में, सोए रहने दे।
मुल्क को कुत्ते प्यारे, रहने दे।
दर्द को न जीभ लगा।
नींद में खलल न डाल।
न जगा भाई न जगा।
×××

पता रखा करो

सूरज किधर से उगता है,
किधर डूबता है, पता रखा करो।
रंग की डिब्बियाँ लेकर
सिर्फ़ महलों की दीवारें ही पोतता,
बड़े घरों के आँगन में,
सुर्ख़, पीले, नीले और दूसरे
रंगों के गुलाब खिलाता है।
कच्चे घरों झोपड़ियों का मुँह चिढ़ाता है।
कभी हमारे, आँगन में पैर क्यों नहीं रखता।

तीखी दोपहर, तांबे-सा तपता है जिस्म।
सूखता है भीतर, बचा हुआ थोड़ा बहुत रक्त।
पसीना पोछते मारी जाती है मति।
तेज़ तर्रार किरणें मज़ाक करतीं।
आशाएँ उम्मीदें तड़प तड़प मरतीं।
सिकुड़ जाता है वजूद जब आती सर्दियाँ
नंग धड़ंगों पर क्या बीतती है।

ए,बी,सी, खा चुकी है
शिखर दुपहरे 'ऊड़े' पर के जूड़े
पाठशाला की छतों को
उड़ा कर ले चला है टाई वाला तूफ़ान।
जुगाली करता चिंगम-ज्ञान
अस्पतालों से इलाज़ नहीं
मृत्यु प्रमाण पत्र मिलते हैं।

कौन ले गया हमारे नयन प्राण
गीत संगीत में खटास कौन घोलता।
सुरों को सुअरों की तरह कौन रौंदता
शब्द-संस्कृति में से आचार।
ज़िंदगी के हर हिस्से में से किरदार।
साझे जीवन-मरण का व्यवहार।
किस अज़गर की फूक से
ख़ाक हुआ?

फुलकारियों * को फाड़ कर
चढ़ते जाड़े में पशुओं हेतु ओढ़ना बनने वाला है।

ब्याह शादी के मंडप,
बारात की रंग बिरंगी दस्तारें,
परेड जैसी होंगी।
बहुत हो गया रंग रंग खेलना।

काश्मीर से कन्याकुमारी तक
अब पता लगेगा कि भारत एक है।
जीभ को अब पता लगेगा कि
बत्तीस दाँतों के बीच कैसे रहते हैं।
बहुत हो गया मन मर्ज़ी का नाच।
हमारा ही लिखा पढ़ना पड़ेगा।
सिलेबस बदल गया है।

लाल किले की फ़सील से
अहंकार सिर चढ़ कर क्यों बोलता है।
साबित कदमों का ईमान क्यों डोलता है।

* कढ़ाई किया हुआ एक खास तरह का कपड़ा

भूल जाओ कि मुल्क सिर्फ़ जमैटरी बक्स में से
निकाले परकार का खींचा नक़्शा ही होता है।
बदल सकती हैं ग्लोब की फाँकियाँ।
मुल्क में और बहुत कुछ होता है।
जैसे फूलों में रंग और महक
अनार के दानों में रस।

जीव जंतु में भरोसा विश्वास
हदों सरहदों में रह कर भी
व्यवहृत न करने का विस्तार
कब और क्यों जंग में बदलता है।

धीमी रफ़्तार में धड़कता दिल
छलनी फेफड़ों में जमा गर्द गुबार
गुर्दों में जमा हुआ कचरा और
और बहुत कुछ ऐसा होता
यदि कोई तुम्हें
त्वचा रोग के वैद्य की ओर भेजता है
तो उसकी आँख के टेढ़ेपन को पहचानो
राह से कुराह पर क्यों डालता है
मौसम विशेषज्ञों से पूछो तो सही
समुद्र की तरह ज्वार भाटा
कब आएगा हमारे मनो में
कब लगेगा आशाओं के वृक्ष में बौर
कुछ तो बताओ हुज़ूर
सूत कातती मक्के की बालियाँ
धान की मंजरियाँ
गेहूँ की बालियाँ
कब तक साहूकार के बही की
गुलामी काटेंगी
बही खाते के पन्नों से

हमारा नाम कब मिटेगा?
पता रखा करो
कितने काल तक और?
×××

जिनके पास हथियार हैं

जिनके पास हथियार हैं
वह जीना नहीं जानते
सिर्फ़ मरना और मारना जानते हैं।

खेलना नहीं जानते
खेल बिगाड़ना जानते हैं।
शिकार खेलते खेलते
खूंखार शिकारी
हर पल शिकार तलाशते।

जिनके पास हथियार हैं
उनके पास बहुत कुछ है
खुशियाँ प्रफुल्लता चावों के सिवा।

हथियार वालों के पास
गठरियों की गठरियों हैकड़ी है।
अहंकार है बेशुमार
जंगली व्यवहार है
प्राण हरना किरदार है
रहम के सिवा।

वह नहीं जानते
हथियारों का मुँह काला होता है
और मौत के सिवा
वह कुछ बाँटने के काबिल नहीं होता

बेरहम दरिंदे जैसे
हथियारों के बनजारे
अंतर्राष्ट्रीय हत्यारे
आदमख़ोर व्यवहार वाले
ज़िंदगी से कोसों दूर।

हथियार वालों के पास
शब्द नहीं होते
धमकियाँ होती हैं
मरने मारने की
हाँफती जीभें होती हैं
उनके पास झाँझरें नहीं होतीं
चावों के पैरों में डालकर नाचने को।

छनकार उनके शब्दकोश का
हिस्सा नहीं बनता कभी
धरती पर बिछी बिछाई रह जाती है
फूलों कढ़ी चादर।
कुछ और नहीं होता उनके पास
जिनके पास हथियार होता है।
× × ×

रंगोली में रंग भरते बच्चे

रंगोली में रंग भरते बच्चे
मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।
रब्ब जैसे सर्जक
बदरंग लकीरों में जान डालते
जीवन धड़काते
देखा देखी साथ साथ
गीत गाते।
रंगों को धड़कन सिखलाते।

रंगोली में रंग भरते
बच्चों को देखते
नन्ही नन्ही शरारतें
करता रब्ब दिखेगा
मासूम-सा गोल मटोल आँखों वाला
बेपरवाह, निश्छल, निष्कपट, निर्विकार
सिर से पैरों तक हरकत
इसी से बरकत।

मैं भी नन्हा था तो रब्ब होता था
रंगोली में रंग तो नहीं भरा
पर सपने कुछ ऐसे-से ही थे
चिकनी मिट्टी से खेलना
घुघ्घू घोड़े बनाना
ज़ोर-ज़ोर से धरती पर पटकाता
पटाके डालता

फिर उसी मिट्टी को और गूँधता
बैलों की जोड़ी बनाता
गले में जुआठा डालता
पीछे दोशाखा टहनी का
हल नाधता
बीज बोता नरकुल के डंठल से।
पाटा देता
और बोई फसल के उगने की प्रतीक्षा करता।

अब मैं मिट्टी में नहीं
कोरे पन्ने पर सपने बोता हूँ
उम्र में बड़ा होकर भी
वैसे का वैसा हूँ
तो ही सपने उगने की प्रतीक्षा करता हूँ।
कोरे पन्ने के ख़िलाफ़
युद्ध न सही
तैयारी तो करता हूँ।
×××

बच्चे नहीं जानते

रेत बजरी के बनजारों ने
बदल दिए हैं बच्चों के खिलौने।
अब वह
मिट्टी के घर नहीं बनाते।
बरगद या पीपल के पत्तों से
बैलों की जोड़ी
टहनियों से हल जुआठा।
सन की रस्सी बट कर
हल नहीं नाधते।
तीखे शूलों का
फाल नहीं बनाते।

वह जान गए हैं
कि खेत खा जाते हैं
मेरे बापू को जड़ सहित।
हल के कूँडों में अव्वल तो भूख उगती है।
यदि कभी फसल हो जाए
तो लाभ हमें नहीं देती।
आढ़तिए के हक़ में ही
भुगतती है सालों साल।

अब वह बाजार से
लकड़ी के बने
ट्रक ले आए हैं।
नंग धड़ंगों ने

रेत की ढेरी इकट्ठी कर ली है।
बैठ गए हैं पास, ग्राहक की प्रतीक्षा में।
बच्चे नहीं जानते कि
हमें स्कूल से मिलता सबक कच्ची लस्सी है।
जिसमें से कभी भी
मक्खन का लोंदा नहीं निकलता।
वह तो और स्कूल हैं
जहाँ मलाई मथते हैं
मक्खन घी के बनजारे।

बच्चे बड़े भ्रम में सोचते हैं
रेत बजरी बेंच कर
हम भी अमीर हो जाएँगे।
घूमती कुर्सी पर बैठेंगे।
हुक्म चलाएँगे।
लोगों को डराएँगे।

पर बच्चे नहीं जानते
कि उनके ट्रक खिलौने हैं
असली ट्रकों के
टायरों तले कुचले जाएँगे
तुम्हारे सपनों की तरह।
इस मार्ग पर चलने के लिए
बाहुबली चाहिए हैं।
तुम अभी बहुत नन्हे हो।
×××

उनसे कहो

उनसे कहो
हमें न बेंचे सारागढ़ी * का मैदान।
युद्ध कह कर गुलामी का सामान।
केसरिया पुड़िया में बँधा चुनाव निशान।

हमें सब पता है
किले कभी लोगों के नहीं होते।
किलों में कौन बैठता है
तख़्तनशीं होकर।

यह सच है सूरज जितना
कि किले के रखवाले
योद्धे पुत्र हमारे हैं।

झोरड़ा का ईश्वर सिंह गिल होवे
या किसी और गाँव से
गरीब घर का जाया।
फ़ौज़ में रोटी कमाने आया।
फिरंगी राज का ताबेदार
बंदूकधारी तैयार बर तैयार।

सारागढ़ी का किला हमारा नहीं था।
वह तो नागों की बांबी थी।
जो हमें ही डस गई।

हमारे तो सिर्फ़ वह पठान भाई-बंधु थे,
जिनको फिरंगी नाग
रात दिन डसते थे।
स्वाभिमानी पुत्रों को
रोज़ शूली पर टाँगते थे।
बागियों के बच्चे
मुँह से पानी पानी माँगते थे।

स्वाभिमानी दिलेरों के लिए
हक़ और इंसाफ़ माँगते
धरती पुत्र शेरों को
ताज़ के रखवाले बन
घेर घेर मारना
सिखों का व्यवहार नहीं।

कुल्हाड़ी राजभाग थी,
हम बेंट थे
अपने भाइयों को
धरती के चावों को
मारना बताओ
कहाँ लिखा बहादुरी।
×××

* सारागढ़ी किला जहाँ मात्र 21 सिख सैनिक 10000 अफ़गानियों से घिर कर 12 सित. 1857 के युद्ध में शहीद हो गए।

शबद-अबोल

दिन चढ़ा है।
दर्दों का दरिया बढ़ा है।
तटबंधों को काट-पीट कर मेरे मन में आ घुसा है।
टखने टखने, घुटने घुटने, गले गले पानी,
अब तो सिर से लाँघ गया है।
रक्तिम सुर्ख सरोवर मन का।
लाची बेर उदास खड़ी है।
दुखभंजनी भी अश्रुपूरित,
सब वृक्षों से पंछी उड़ गए।
आधी रात में हमला बोला है।
टहनी टहनी पत्ता पत्ता
कौए गिद्धों बाज़ों ने मिल कर
हर वृक्ष ही छान है मारा।
खोजते फिरते, टहनी पत्ते कौन हिलाए?

गुरु नानक के बोल सुनते यह क्या हो गया?
नभ के सारे तारे नीले रंग के।
असली रंग खो गया।
क्या हुआ है अमृत वेला में,
चारों वर्णों के साझे घर में घुस कर।
अंधी गोलीबारी शबदों की छाती चीर गई है।
तबला लहू लुहान पड़ा है।
तानपुरे की तारें टूटीं
कानों में गड़ गड़ का हमला।
कंठ के भीतर जहरीला धुँआ,

फेफड़ों तक पहुँच गया है।
इस जन्म में अपनों के कृपा की बलिहारी,
मन मंदिर को घेरा पहली बार पड़ा है।
× × ×

शीशा सवाल करता है

लाहौर शहर में
शाही किले के सामने
गुरुद्वारा डेरा साहिब में
बहुत बड़ा
आकाश जितना शीशा लगा है।
जिसमें जहांगीर हर रोज़
अपना चेहरा निहारता।
खुद को फटकारता
कुछ इस तरह मुँह से उचारता है :

जिस शबद को
मैंने गर्म तवे पर बिठाया।
हर जुल्म कमाया।
वह आज भी सहज गति से
शीतलता बाँटे।
दुहाई ओ मेरे अल्लाह की दुहाई,
मुझे यह बात समझ में न आए।

शहर लाहौर से
बर्फ़ के घर काश्मीर में जाकर भी,
आग मेरे साथ साथ चली आई।
छाती में जलती है,
तब की लुकेठी लगाई।
इतनी सदियों बाद
पुश्त दर पुश्त,

यही आग मेरा आज भी पीछा करती,
जब्र ज़ुल्म से तनिक भी न डरती।
होनी मीठा कर मानती
साँस साँस हर हर करती
यही कहती है,
जहांगीर! सत्ता के साथ बगलगीर!
भूलना मत।
बादशाहों की बदी रक्त चूसती है
पर
पातशाह* सँभालते हैं स्वाभिमानी प्रतिष्ठा।
वक्त! मुझे माफ करना
मैं गर्म तवे, जलती रेत,
और बहती रावी में
हर रोज़ तपता, जलता और डूबता हूँ।
किले में से निकलते हर रोज़,
शीशा मुझसे अनेकों सवाल करता है।
हाल से बेहाल करता है,
सारा दिन पीछा नहीं छोड़ता।
बेहद निढाल करता है।

सवाल दर सवाल करता शीशा,
बेजिस्म है
मुझसे टूटता नहीं
निराकार है
तनिक भी फूटता नहीं।
यह शीशा मुझे सोने नहीं देता।
× × ×

* सिख गुरुओं को पातशाह कहते हैं।

लम्बी उम्र इकट्ठे

तूने पूछा है मेरे बेटे!
माँ री माँ,
सारी उम्र इकट्ठे रहना।
कैसे गढ़ा रूह का गहना।

बात तो बड़ी आसान-सी है।
पर तुझे यह नहीं समझ में आनी है।
मैं और तेरा बाबुल दोनों,
उस वक्त के जन्मे जाये।
राह में जिसके काँटे आए।
मिलकर हम दोनों ने हटाए।

मेरा कमरा तेरा कमरा,
तब यह रोग नहीं था।
तेरी नानी तेरी दादी,
दोनों थीं इस घर की माँएँ।
शिखर दोपहरी सिर पर साये।
जो भी टूटता गाँठ लेते थे।
प्यार मुहब्बत बाँट लेते थे।
रूठता एक मनाता दूजा।
घर मंदिर में यूं करते पूजा।
टूटा जोड़ने में ही
उम्र गुज़ारी सारी।
अब भी सफ़र
कभी लगा नहीं

रूह को भारी।
कपड़े को जो खोंच लगती
मैं सिल लेती।
घर में बर्तन खड़के तो
गैरों ने सुना नहीं।

मेरी मम्मी तेरी मम्मी
मेरा डैडी तेरा डैडी
यह तो वायरस नया नया है।
उस समय तो एक थी धरती,
एक मात्र ही था सिर पर अंबर।

अब तो बर्तन बिन खड़के जाते हैं टूट।
एक दूसरे संग टकराना
रूह से अलग अलग रहना।
टूटना और बाद में
टुकड़े चुगते रहना।
इस रोग का नाम न कोई।

अपने मन में जो रस होवे
रिश्तों में खुशबू होवे।
एक सपने में रंग यदि भरिए,
यह जीवन महकों का मेला।
मोह का सागर यदि बन जाए भवसागर,
तैरना लगता है तब अति दुष्कर।
×××

कोरी स्लेट नहीं होते बच्चे

बच्चे कोरी स्लेट नहीं होते,
और बहुत कुछ होते हैं।
उनके मन मस्तक में
गूढ़ी इबारत तथा
और बहुत कुछ लिखा लिखाया।
सिर्फ़ हम ही उसको
पढ़ना नहीं जानते।

बच्चे के नेत्रों में सैकड़ों समुद्र तैरते,
सपनों में घूमते जमीं आसमां।
अखंड ब्रह्मांड, नक्षत्र कितने सारे।
तीव्र गति की बिजली भरे
नन्हे नन्हे पैर ख्वाबों जैसे।

बच्चों से ही सीखा है
नरमे ने खिलना।
परिंदों ने पंख पसारना।
पवन ने करनी अठखेलियाँ,
और दिन रात महकना सीखा है।

बच्चों ने ही सिखाया है
शिरीष के फूलों से लेकर
रात की रानी तक को महकना।
नृत्य-सी करती चूड़े खनकाती
सद्यविवाहिता को टहकना

कदम कदम ताल ताल दरिया-सा बहना,
चुपचाप चलना मुँह से कुछ न कहना।

बच्चे ही सिखाते हैं किस्सागोई
पीढ़ी दर पीढ़ी पुश्त दर पुश्त।
नहीं तो कब का भूल जाते,
जंगल में खोए
रूप बसंत की कहानी।

नहीं मरने देते हमारी
अनंत सफ़र पर चलने की अभिलाषा।
लगातार भरते हैं
माँ बाप के परों में परवाज़
उड़ने पुड़ने पवन सवार।
पालने में पड़े बच्चे भी हमें ऊर्जा बख़्शते
नन्हे नन्हे सूरज।
नेत्र जगमग जुगनुओं का जोड़ा।
पास बुलाते और समझाते,
हमारे पास बहुत कुछ है तुम्हारे लिए।

जिस तरह की मासूमियत है गुलाब की पंखुड़ियों-सी,
रवेल की सफ़ेद कलियों-सी।
तार पर लटकती ओस की बूँदों-सी।
जलकण जलकण।
तरलता है पारे-सी।
निर्मल नदी में तैरते बुलबुले-सी।
थोड़े समय ही सही, साँसों में घुलनशील।
मिश्री से भी मीठी मुस्कान।
श्वासों में चलेगी उम्र भर साथ साथ।
बच्चे बहुत कुछ कह जाते हैं बिन बोले।
तुम्हारी आँखों में से मुहब्बत की
वर्तनी रटते बच्चे।

मासूम रब्ब नन्हे-से।

बच्चा तो बच्चा होता है
लड़का या लड़की नहीं होता।
माँ-बापों तुम क्यों अफ़सोस करते हो।
स्वार्थ के मारे फ़र्ज़ भूल जाते हो।
भूलो नहीं, रिश्तों के साथ बेईमान
दोनों जहान में बरबाद होते हैं।

कोमल तंतु विनष्ट कर कौन-सा धर्म पालते हो
धर्मवान पिताओं कोखों की तलाशी लेते,
भूल जाते हो जननहारी माँ।
नन्ही-सी राखी घोड़ी* की वल्गाएँ गूँधती।
परदेसन बहन
परिवार का सुख मनाती सुबह शाम,
बाबुल का बसता रहे आँगन।
बसता रहे मेरा नगर गाँव।
खुद के लिए कभी कुछ न माँगती,
दरियादिल बिटिया प्यारी
इसकी भी अलख मिटाते हो।
बड़ी अक्लों वाले!

बेबस आँखों की इबारत पढ़ो ध्यान से
अनलिखे कितने ही इकरारनामे
हर्फ़ हर्फ़ शब्द बनते
वैवाहिक गीत
विलाप बनतीं कभी लोरियाँ, तोतले मासूम बोल।

* विवाह के समय दूल्हे की घोड़ी पर सवारी और उस समय गाए जाने वाले गीतों को भी घोड़ी कहते हैं।

बच्चों की इन स्लेटों पर
अनलिखा पढ़ो।

बहुत सारी चिंघाटियाँ उभर आएँगी टिमटिमाती।
यही तो सूरज चाँद सितारे हैं
तुम्हारी आगोश में खेलते।
आगोश सँभालो।
×××

पास से गुज़रते हमउम्रों

हमारी किताबें कहीं और हैं,
पन्ना पन्ना बिखरा
घूरों पर पड़े शब्द शब्द
वाक्य वाक्य हमारी प्रतीक्षा में।
हमारे बस्ते और हैं।

तुम्हें माँ ने भेजा है
माथा चूम कर
शगुन का दही खिलाकर।
दोपहर का टिफिन साथ में बाँध कर।

हमें निकाला झिड़क कर
कहा जाओ कमाओ तो खाओ।
घूर खँगाल कर कमाने चले हैं।
और धक्के खाते खाते जवान हो जाएँगे।

हमें भी सपने आते हैं आकाश में उड़ने के।
सूरज और तारों से छुपा-छिपाई खेलने के।
आकाश गंगा में
चरती गायों का थन पीने के।
हमारे जटा जूट बालों में जब
कभी कंघी फिरती है,
सच जानो!
माँ ज़हर-सी लगती है।
उलझे बालों में जमीं मैल

अब चमड़ी का हिस्सा बन गई है।

हमें भी रिबन में गुँथे बाल
बड़े हसीन लगते हैं।
पर हमारे घर में तो
समूचा शीशा भी नहीं
मुँह देखने के लिए।
टूटे शीशे का एक टुकड़ा
टेढ़े मेढ़े मुँह दिखाता।
मुँह चिढ़ाता लगता है।
घूर से बीने प्लास्टिक पोलीथीन
धोएँगे सुखाएँगे
बनिए के यहाँ बेचने
किसी दूकान पर ले जाएँगे
आटा नमक तेल लेकर
भाई काम चलाएँगे
धीरे धीरे धीरे धीरे धीरे
बड़े हो जाएँगे
उम्र लँघाएँगे।

हमें गुलाब जल से
मुँह धोना अच्छा लगता है।
फटे पुराने लिबास की जगह हमें भी
फूलों वाला कुर्ता चाहिए है।
अनछुआ और नया नकोर
पुरानी उतरन पहनते
रीत चली है कंचन देह।
हमारी भी तुम्हारी तरह
यही धरती माँ है।
हमारा बाबुल भी तुम्हारे वाला अंबर है।
एक जैसे मौसमों में
जीते जी हमीं क्यों मरते हैं अनआई मौत।

जवान उम्र में हमारी ही
छातियाँ क्यों पिचकती हैं
क्यों फिरते हैं? बुलडोजर हमारी छाती पर
हमारी झुग्गियाँ ढहा कर।
हमारी पतीलियाँ ही क्यों
ऊबड़-खाबड़ होती हैं।

तुम नहीं जान सकोगे चूरी खाने वालों।
एक होकर भी धरती के दो टुकड़े हैं
आधा तुम्हारा और दूसरा आधा भी हमारा नहीं।

घास फूस कौन बोता है?
पर उग पड़े हैं
हम इतनी जल्दी
नहीं मरने वाले
चलो जाओ पढ़ो
अपने स्कूलों में
बनो बाबूनुमा पुर्जे
मिल जाओ खारे समुद्र में
हमारे आँसू भी
वहाँ पहले ही दफ़न हैं।
× × ×

साईं लोग गाते

साईं लोग गाते हुए
मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।
जैसे दरिया मस्ती में
लहर लहर सुर लगाता।

शिरीष की सूखी फलियाँ
छनकतीं पतझड़ ऋतु में।
ख़ानगाह पर जलता
सरसों के तेल का चिराग।
साईं लोग गाते हुए
मंत्रमुग्ध कर बिठाते हैं बेचैन वृत्तियाँ।
पानी में डूबे घड़े-सा
रूह तृप्त हो जाती है दोतारा सुनते।

तड़के सवेरे प्रभाती गाता
जोगिया कपड़े वाला
बाबा गिरि आता दिन उगे।
उसके भिक्षापात्र में गुड़वाली चाय
मैं ही डालता।
लगता कि सुरीला रब्ब आकर बैठा है
हमारे द्वार।

आटा माँगता अपने परिवार के लिए।
हमारे परिवार के लिए आशीषें बाँटता,
नन्हा-सा सुरवंता वक़्त।

अभी भी मेरे साथ साथ
चलती हैं उसकी प्रभातियाँ।
साढ़े तीन हाथ धरती
बहुत है जागीर वालों।
काम कर ले निराभिमानी जान
सोए हुए नहीं दिन चढ़ता।

देख चल पड़े हलों को लिए हलवाहक
जान तू खर्राटें भरती।

तेरा चाम नहीं किसी काम आना
पशुओं की हड्डी बिकती।
लौटता तो लगता
गाँव से रूह चली गई है।
सुरमंडल समेट कर।
साथ ही ले गया है बाबा गिरि
सुर लहरियाँ।

किताबों में बहुत तलाशा सारी उम्र
वह कौन था?
चलता-फिरता ईश्वरीय नाद-सा।
हाड़-माँस का पुतला-सा।
मुट्ठी भर आटे के बदले
गली गली फिरता
सुरवंता संपूर्ण रब्ब।

बहुत बाद में पता लगा!
रब्ब बड़ी शैअ है
कभी छिप जाता है
मरदाने के रबाब में
बाणी के अंग संग चलने के लिए।

कभी पैर में घुँघरू बाँध कर
बन जाता है बुल्ले शाह।
इश्क में नाचता
करता थइया थइया।
तुंबे की तुंबी बना बन जाता है यमला जट्ट,
कभी आलम लोहार कभी शौकत अली।
मस्ती में गाता, हो जाता है
तुफ़ैल नियाज़ी, पठाने खां, मंसूर अली मलंगी,
साईं दीवाना, साईं मुश्ताक, साईं ज़हूर, मेरा हुज़ूर।
तुंबा बजता है
घुल जाता है साँसों में।
इश्क चंबे की बूटी बन
कण कण में सुरूर भरता है।

घड़ा बजता, किंगरी बजती
तू तुंबा बजता सुन ज़िंदगी।
यह दुनिया बाग बहिश्ती है
हर रंग के फूल तू चुन ज़िंदगी।

अब पता लगा है कि साईं लोग
मुझे क्यों अच्छे लगते?
यह किताबों के गुलाम नहीं
धरती को कागज़ बनाते।
सुरों से अंबर पर
इबारत लिखते रमते जोगी।
सागर जितना जेरा।
तोड़ते बंधन घेरा।
साईं लोग गाते, तब ही दिखते हैं
गलियों में चलते फिरते रब्ब।
×××

थोड़े से पैसों में

थोड़े से पैसों में बहुत कुछ मिलता है
आवाज़ परवाज़ और अंदाज़।

पैरों पर मिट्टी थाप कर कच्चा घर बना सकते हो।
नन्ही-सी शहनशाही के लिए
सरकंडे का दरबान खड़ा कर सकते हो
घास के तिनकों के झुमके,
छल्ले मुँदरियाँ और दूसरा गहना गट्टा।
महबूब के लिए बिना माप बना सकते हो।
इस उम्र में कमदस्ती के मारे घरों के
बेटी बेटों का माप कौन जानता है?
फटे पुराने कपड़ों से गेंद और चावों के बेल बुट्टे
बड़ी बहन से बनवा सकते हो।

मस्ती में आकर लम्बा आलाप भर सकते हो।
थाली को साज़ बना सकते हो।
सुर और ताल के साथ अंबर गाहते
ख़्वाबों जैसे तारे तोड़ सकते हो।
स्वप्न-शहजादी के बालों में
टाँक सकते हो कहकशां
माथे पर चाँद का टिक्का टिका सकते हो
थोड़े से पैसों में।

रात में सोने के समय तारे गिन सकते हो।
अभिलाषाओं को कह सकते हो जागते रहना,

मैं सोने चला।
सवेरे फिर मिलेंगे सूरज उगते।
किरणों का झुरमुट थोड़े से पैसों में
बहुत कुछ खरीद सकते हो।

यदि पास में कुछ नहीं तो
दीवार पर लकीरें खींच औसिया* डाल सकते हो।
अच्छे समय की प्रतीक्षा में।
अपनी छाँव में चल सकते हो
किसी की परछाई बने बगैर।

मनभावनी तस्वीर से बातें कर सकते हो।
बिन बुलाए हुँकारी भर सकते हो।
बहते पवन को संदेशा दे सकते हो,
आहों को डाकिया बना सकते हो।
पवन के कमर में करधनी बाँध सकते हो।
सपनों को रंगों में बदल सकते हो।

जाड़े की धूप का आनंद ले सकते हो
खाली पेट बजा सकते हो
साज़ की तरह सुर कर सकते हो
मन वचन और कर्म।

पैदल चलते घास पर पड़े
ओस-मुक्ता चुन सकते हो।
चिड़िया की चहचहाट में से
भूख के गीत का तर्ज़ तलाश सकते हो।

किसी दानवीर की ओर राह में लगवाई
नन्ही रहट गेड़ सकते हो

* एक तरीका जिसमें लोग लकीरें खींच कर किसी बात का अंदाज़ा लगा लेते हैं।

चना चबाते रहट की नाली से अँजुरी भरकर
पानी पी सकते हो।
शिरीष की छाँव में सोने के बजाय
जागते हुए टहनियों के झरोखों से
रोटी के गोल पहिए जैसा
लुढ़कता सूरज देख सकते हो।
इसके सुर्ख रंग को सपनों में भर सकते हो।

मँहगा हो गया है बाज़ार
अपना संसार स्वयं गढ़ो।
आपस में नहीं मँहगे बाज़ार से लड़ो।

नंगे धड़ और कुछ नहीं तो
दाँत पीसा जा सकता है।
झूठ की दूकान से सौदा खरीदने से
मन मोड़ा जा सकता है।
बहकावों और नारों में
खोट परखी जा सकती है।
हवाई किलों की नीवें
खँगाली जा सकती हैं।
दर्दों के संगी साथी को
गलबाँहें डाल सकते हो।
बरसात में नहाते
मेघ मल्हार गा सकते हो।
फटी बिवाइयों वाले पैरों में
चावों की झाँझर पहन
मन के बाग में मोर नचा सकते हो।
बहुत कुछ कर सकते हो।
हताश ढह कर बैठे
रात खा जाती है समूचा वजूद।
पी जाती है बतासों-सा घोल घोल कर
किलकारियाँ

कर देती है धूप मटमैली।
झाड़ देती है वृक्षों के पात
छाँव चितकबरी कर देती है सत्ता की आँधी।

अपना आपा इकट्ठा करो।
तिनका तिनका जोड़ो साथ जीओ साथ मरो।
ज़मीनों के रखवालों!
थोड़े से पैसो में, ज़मीर न बिकने दो।
×××

मैंने उससे पूछा

मैंने उससे पूछा?
तुमने कभी बहता दरिया देखा है।
उसने सतलुज का नाम लिया।

कहाँ देखा?
उसने कहा पहाड़ से उतरता।
मैंने कहा! इतना वेग भरा दरिया?
न देखा कर!
आदमी ख़ूंख़ार हो जाता है।

कभी रावी देखा
डेरा बाबा नानक के पास
लहर लहर बहती शांत
सवेर का कलेवा लेकर
खेतों में जाती नवयौवना की तरह
ठुमुक ठुमुक चलती।
हवाओं को गीत सुनाती
चुपचाप सरहद पार करती
करतारपुर साहब मत्था टेकती
फिर मुड़ आती रामदास के पास।
बाबा बुड्ढ़ा जी के चरण परस
फिर चली जाती डेरा साहब लाहौर।
ऐसा लगता तीरथ करती फिरती है
ऐरावती नदी।

मैंने पूछा?
तुम कभी सूखने को पड़े
दोशाखा फँसा कर चारपाई की छाँव
मकई के दानों की रखवाली में बैठे हो?
उसने कहा
हाँ! छोटा था तो बहुत बार।
या फिर पसारे गेहूँ के दानों पर
पाँवों के छाप छोड़ती दानों को चुगती
घुघ्घी देखी थी।
उसने कहा
हाँ, तुम्हें कैसी-सी लगती थी?
मैंने कहा,
तेरी तरह धीमे धीमे हँसती।
पपोटों से सेवइयाँ बटती मेरी माँ जैसी।
अब भी मुँह स्वाद से भर जाता है याद करके।
मैंने उससे बहुत बातें की।
यह भी कि मेरी बड़ी बहन मनजीत ने
जब चूल्हे के आगे पड़ी राख बिछा कर
मेरे लिए पहली बार 'अ' लिखा था।
सच उस जैसा आनंद
रूह को कभी नहीं आया।
वह 'अ इ' चलाए फिरता है आज तक।

उसने कहा,
तुम कहाँ से लेते हो कविता का नीलांबर
फुलकारी जैसी धरती को
कैसे गीतों में पिरोते हो?
मैंने कहा!
सब कुछ उधार का है इधर-उधर से।

मैंने पूछा तुमने कभी दरिया के पास जा
उससे बातें की?

उसने कहा, नहीं!
हर बार दरिया ही मेरे पास आता है।
बहुत कुछ सुनाता है, तेरी तरह।
मैं धरती हूँ, सिर्फ़ सुनती हूँ।
×××

दीवार पर लिखा पढ़ो

शब्दों में जान हो तो
वह स्वयं ही
छलाँग मार दीवार पर जा चढ़ते हैं।
बिना सीढ़ी जा बैठते हैं नंगे धड़।

राहगीरों को स्वयं ही
संदेशे बाँटे जाते हैं।
कहें! ओ जाते राहियों
हमारा सँदेशा देना अपने आप को।
सुनना अकेले बैठ कर।
किताबों की गैरहाज़िरी में
कब्रें बन जाता है मन।

बेटियों के बगैर समतल हो जाते हैं
घर के द्वार दीवार।
खाली घरों में जाले।
किताबों, बेटियों वाले घर सुलक्षण भाग्यों वाले।

शब्दों की फ़ाख़्ताओं के बगैर
मर जाती है मासूमियत
बेटियों के बगैर आँगन में
न लोरियाँ न वैवाहिक गीत।
विवाह में गाई जाने वाली गालियों
और सुहाग गीत बगैर
उजड़ जाता है मन का बाग।

बुझ जाते हैं मन मंदिर के चिराग।

न गिद्धे की धमक न रिश्तों की चमक।
सब कुछ बदरंग हो जाता है बेटियों के बगैर।
झूले तरसते हैं
सूरज को हाथ लगा कर लौटने वाली
चंचलता को बेकरार।

करके शृंगार खड़ी बसंत ऋतु
पूछती फिरती है महक का पता।
बेटियों के बगैर बहुत कुछ बेस्वाद-सा।
प्लास्टिक के फूलों की तरह निर्जीव बेजान।

दीवार पर बैठी कविता को सुनो
घरों दरों को कविता चाहिए है।
महकती साँस के लिए
सुरक्षित विश्वास के लिए।
आज की सलामती और
कल के इतिहास के लिए।

दीवारें बोलती हैं जब
तब सुना करो।
वक्त अब
घड़ियों में बैठा किसी का गुलाम नहीं।
चौक में आ खड़ा है सावधान।
ललकार कर बोलता है
किताबें और लड़कियाँ प्यारिए
सपनों और बेटियों को कोख में न मारिए।
×××

सितार वादन सुनते हुए

सितार उँगलियों के पपोटों से नहीं
अँतड़ियों के साथ से बजता है।
सुर लहरी सिरजती कंपन
रूह का राग अलापती।
कण कण में आनंद घोलती।
ब्रह्मांड के कान जागते
वृक्ष झूमते श्रोताओं की तरह।
नेत्र नम होते देखे हैं मैंने।

तारों के पास
अँतड़ियों जितना दर्द होता है।
कभी न ऊबतीं।
कभी न थकतीं।
लोगों के ख्याल में गाती हैं।
वह तो दर्द सुनाती हैं।
आहों को ज़बान लगाती हैं
अनकहा सुनाती हैं।
बहुत कुछ समझाती हैं।

दिल के बहुत करीब होता है
तरल-सा दर्द-निवास
पारे-सा डोलता
तारों के कंपन-सा रागवंता।

तुमने कभी झील के ठहरे पानी की छाती पर

ठीकरी छिछुली की तरह चलाई है?
शायद नहीं
यदि चलाई होती तो निथरे पानी पर
नाचती स्वर लहरियों को
तुमने झट पहचान लेना था
कि यह बचपन के समय
सितार से अलग हुई जुड़वा बहनें हैं।
एक जैसे स्वभाव वालियाँ,
तरल चंचल तरबज़ादियाँ।
मुझे सितार बादन सुनना
बहुत अच्छा लगता है।
मेरी अँतड़ियों से इसका
आदि युगादि रिश्ता लगता है।
मेरे लिए सितार साज़ नहीं
धरती का आत्म वादन है।
इसमें शामिल है मेरी तेरी
सबकी अँतड़ियों की डोरें।

यदि तुम्हारी अँतड़ियों की डोर जीवित है
तो तुम सितार
सुनने के लिए बैठ जाओ।
नहीं तो वक्त जाया न करो।
अपने जिस्म में से निकलो!
यह साज़ मेले की भीड़ में नहीं बजता।
स्वयं में से शोर खारिज़ करके
सुना जाता है।
× × ×

सूरज के साथ खेलते

सूरज के साथ खेलते धरती जितना जिगरा
आकाश जितना विशाल आगोश
और समुद्र जितना गहरा दिल चाहिए।

यूं ही नहीं बनता यह गगन थाल जैसा।
नहीं बनते सूरज और चंद्रमा,
नन्हे नन्हे दीवे।
तारा मंडल निहारना एक नज़र
और बताना मोतियों का थाल।
सारी कयानात के फूल पात।
जड़ी बूटियाँ
महकती हवाओं को चँवर में बदलना
इतना सहज नहीं होता जनाब।

खुद को खुदी के पाटों के तले से निकालना,
और कुलपालक नहीं लोकपालक बनना।
अपनी मिट्टी स्वयं खोदना, कूटना, गूँधना
और फिर से निर्मित होने के बराबर होता है नित्य नियम।
सूरज के साथ खेलने के लिए
उसका साथी बनना पड़ता है
जोड़ीदार, बाल सखा, यार।
यूं ही नहीं पड़ती आँख में आँख।
हाथों के कक्कन पर पकड़ दृढ़ करनी पड़ती है।
निरंतर निभने के लिए।
ख़ाक होने के लिए हर पल

तैयार बर तैयार रहना पड़ता है।
सिर धर तली गली मोरी आओ का सबक
सिर्फ़ कीर्तनियों के लिए ही नहीं,
खुद की अँतड़ियों से
नाथना पड़ता है यह संदेश।

सूरज का गोला गेंद बना कर
खेलने के लिए
खुद को गैरहाज़िर करना पड़ता है।

छोटे छोटे खेल खेलते
भूल ही गए हैं बड़े खेल।
पूरी धरती को कागज़ बना कर
पूरे समुद्र की स्याही घोल
सारी वनस्पतियों की कलमों से
इबारत लिखने जैसा बहुत कुछ।
बिसर गया है सुखों की अभ्यस्त त्वचा को
असल काम।
गऊ गरीब की रक्षा करते स्वयं नहीं भेड़िया बनना।
न बस्तर के जंगलों में शिकार खेलना है।
वृक्षों की वेदना सुनना है।

तन तपते तवे पर धरते
तेरा किया मीठा लागे की
शिखरीय चोटी पर चढ़ना पड़ता है।
यूं नहीं तपती रेत तपस्या बनती।
सूरज के साथ खेलते तन तंदूर-सा तपाना पड़ता है
हड्डियों के ईंधन से।
यूं ही नहीं नसीब होती लालन की लाली।
शब्द साधना के बाद ही बनते हैं सूर्यवंशी।
सिर्फ़ जन्मजातिए केवल ईंट पत्थर
निरा बचा-खुचा कूड़ा करकट

भ्रम पात्र सँभालते
बिता लेते हैं पूरी अवधि।

धरती पर लकीरें खींचते
वतन वतन खेलते
रक्षक होने के भ्रम में
खुद छिपते फिरते शाहदौले के चूहे।
सत्ताधीश बनते शिक्षाशास्त्री बौने।
क्या जानें उड़न पखेरुओं की उड़ान
हमें दिन रात सिखाते हैं
रेंगने की तकनीक।
अट्ठारहवीं सदी की ओर
मुँह कराते हैं चाबुकधारी।

अब कुल ब्रह्मांड
अपना अपना लगता है
सबका भला
सिर्फ़ अरदास के समय ही नहीं
दम दम के साथ चलता है
सूरज के साथ खेलते।
× × ×

आशीष *

कितना कुछ बदल देती है आशीष
फीका लगता सूरज गाढ़ा हो जाता है।
चंद्रमा आकाश से उतर कर
अकेला मामा नहीं, तारों सहित
पूरा ननिहाल बन जाता है।

वर्षा की बूँदें अर्थ बदलतीं।
रहमत बन जाते हैं जल कण।
आशाओं के बौर
दुध्धे दानों में बदल जाते हैं।
बेटी माँ बन जाती है
और पुत्र पिता।
कितना कुछ बदल जाता है
एक आशीष के साथ।

ऋतुएँ सुरीली
बहारें महमहाती।
हवाएँ बहतीं इत्र भीगी।
वक्त की रफ़्तार बदल जाती है।
चाँद पर चलने की तरह
हल्के फुल्के कदम।
शहद कटोरी नाको नाक भर जाती है।
छोटी इलाइची घुलती है
साँसों में
एक आशीष के साथ

घर का सारा व्याकरण बदल जाता है।
गड्ढे भरते
टीले ढहते
समतल धरती पर चलना
अच्छा लगता है
एक आशीष के साथ।

घर की दीवारों में से
मुबारक आवाज़ें आतीं
शिरीष के पत्तों के
वंदनवार सजते।

द्वार पर लगे वृक्ष पर
चिड़ियाँ चहचहातीं सुबह सुबह
हमारी बेटी के साथ खेलने आई
सखियाँ सहेलियाँ लगतीं

कितना कुछ
बदल देती है आशीष
सबका भला माँगती है ज़बान।
कण कण शुक्राना करता
एक आशीष क्या का क्या कर देती है।
× × ×

* 25 सितम्बर 2018 को मेरी पौत्री के जन्म की ख़बर मिलने पर।

बहन नानकी भाई को तलाशती

बहन नानकी पूछती फिरती
इस शहर में कितने समय से
दिन निकला शामें ढलीं
सुल्तानपुरे की गलियों में से
सूरज भी अपने घर चला
वृक्षों ने समेट ली छाया...।
वीरन नहीं आया...।

पाँच सदियों से आधी और होने को आए।
सोए लोगों को बहुत जगाए।
आदमखोर शेरों, चौधरियों ने फिर
नाका सब जगह लगाया।
वीरन नहीं आया।

उसने हमें जहाँ से मोड़ा।
भ्रम पात्र जो जो तोड़ा।
उसी राह पर उलझे जहाँ से
वर्जा और समझाया।
नानक नहीं आया।

धरती कागज़ पड़ा प्रतीक्षित दिखे।
आए लौट कर शबद लिखे।
खींच जाए फिर नई चिंघाटी
माँ तृप्ता का जाया।
नानक नहीं आया...।

बेई* से उसने पूछा जाकर।
कहाँ गया तेरे जल में नहा कर।
एक ओंकार शब्द का प्रहरी
कौन से वतन सिधाया।
नानक नहीं आया...।

कान फोड़ू ढोल ढमक्के।
पापी मन भी धुन के पक्के।
कण मात्र भी न हिलते थोड़ा
वृथा जन्म गँवाया।
नानक नहीं आया....।
ठौर ठौर पर तंबू और कनातें।
पहले से काली रातें।
दिन भी जैसे मटमैला पन्ना
मन परदेस सिधाया।
नानक नहीं आया...।

मिलजुल कर सब चोरों यारों।
खोटे मन के ठेकेदारों।
ज्ञान गोष्ठी, बेंची कविता
जिसके हाथ जो आया।
नानक नहीं आया...।

न यह बाबर काबुल से धाया।
न ही फौज़ें साथ ले आया।
फिर भी ले गया बोल और बाणी
सोना रेत मिलाया।
नानक नहीं आया।
वीरन नहीं आया।
×××

* एक नदी।

अब अगली बात करो

माना कि ताली एक हाथ से नहीं बजती,
पर तुम ताली नहीं, थप्पड़ मार रहे हो।
विधान के लालो लाल मुँह पर।

हम सब जानते हैं
ताली का ताल सुमेल ने निकलता है,
और थप्पड़ हैकड़ी से।

हमसे पहले कितनों के साथ तुमने
कहाँ कहाँ कौन कौन ताली बजाई है!
या थप्पड़ मारा है,
वक्त के बही पर पाई पाई का हिसाब लिखा धरा है।

मेहरबान! दोनों के खड़ाक में भी
बुनियादी अंतर है।
थप्पड़ ठाह करके एक बार ही बजता है
और ताली लगातार।

हमारे हाथ पैर बाँध कर
हमें तालियाँ बजाने के लिए न कहो।
हाथ खोलो फिर बताएँगे कैसे बजाना है?
हाल की घड़ी तुम बोल रहे हो, हम सुन रहे हैं।
वार्तालाप कहाँ है?
हमारे गुरु का उपदेश है, जब तक जीवित हो,
कुछ सुनो भी, साथ ही कहो भी

रोष न करो, उत्तर दो।
अब अगली बात करो!
× × ×

पहली बार

माथे की त्योरियाँ
हल की गहरी रेखा बनी हैं।
हलवाहकों ने
दुश्मन की निशानदेही करके
दर्दों की गुड़ाई जुताई की है।
इस धरती ने बहुत कुछ देखा है।
नहरों के बंद मोघों को खोला है बाबाओं ने।
हरसा छीना आज भी ललकारता है
मालवे में कुलकों को
भगाया था सुतंतर के साथी काश्तकारों ने किशनगढ़ से।
दाब लिया था गाँव गाँव मंडी मंडी।
सफ़ेदपोशों में सुर्खपोशों ने मचाई थी भगदड़।
इतिहास ने देखा।

जब्रशाही से टकराते
खुश हैसियती टैक्स को ललकारते
आज भी स्मृतियों में जागते।
चाचा चोर भतीजा डाकू
मंडलियों में गाते जांबाज़।
अन्न राशि की रखवाली जानते हैं
कृषि औजार बरतने वाले
सरकार से लड़े हर बार।

पर यह देखा पहली बार
अलग तरह का सूरज
नई किरणों समेत उगा।

दुश्मन की निशानदेही की है।
कार्पोरेट घरानों के
कंपनीशाहों को रावण के साथ जलाया है।
दशहरे के अर्थ बदले हैं।
वक्त की छाती पर दर्दमंदों की आहों ने
नई अमिट इबारत लिखी है।

हमें नचाने वाले खुद नाचे हैं,
हकीकतों के द्वार
बेशर्म हँसी में घिर गए हैं
तीन मुँहे शेर छिपते फिरते हैं।
तख़्तों वाले तख़्त ललकारते।

कभी कभी इस तरह होता है,
कि बिल्ला स्वयं गर्म तवे पर पैर धरके तड़पे।
अपने आप ही फँस जाए दहकते तंदूर में।
दुधहँड़ में दूध पीता कुत्ता गर्दन फँसा बैठे।
चोर नकब में ही पकड़ा जाए।
बीहड़ मार-कुटाई खाता फँसा फँसा बेशर्मी में
कुछ भी कहने योग्य न रहे।

पहली बार हुआ है
कि खेत आगे आगे चल रहे हैं।
कुर्सियाँ पीछे पीछे चलतीं
बिन बुलाए बारातियों की तरह।
मनुस्मृति के बाद
नए अछूत घोषित हुए हैं नेता गण।

वक्तनामे की अनलिखी किताब में
पहली बार
तुंबों ढड्डों सारंगियों अलगोज़ों ने
पीड़ा गुँथी तर्ज़ें निकाली हैं।

वक्त ने लम्बे सुरों को शीशा दिखाया है।
मुक्के ललकार बने हैं
चीखें कूकने में बदली हैं।
क्रंदन को आवाज़ मिली है
मुक्ति को ठिकाने का ज्ञान हुआ है।

भीतर की दृढ़ता बाहर आई है।
साज़िशों, षडयंत्रों, चालों, कुचालों के ख़िलाफ़
कन्याकुमारी से काश्मीर तक
भारत एक हुआ है।
लूटतंत्र मुर्दाबाद कहते।

किताबों से बहुत पहले वक्त बोला है।
नागपुरी संतरों का रंग
फक्क हुआ है लोक दरबार में।

मंडियों में दाने तड़पे हैं
आढ़तियों ने आह भरी है।
पल्लेदारों ने कमर कसी है।
सड़कें, रेलवे ट्रैक ने
दादे-पौत्रे, दादियाँ-पौत्रियाँ
जिंदाबाद की योन में पड़ी देखी है।

पहली बार बंद दरवाज़ों के भीतर
लगे शीशों ने बताया है
अंदर का किरदार।
कि कुर्सियों ने नचाया नहीं नाच
झाँझरें बाँध खुद नाची हैं।

काठ की पुतली को नचाते तंतु के
पीछे के हाथ नंगे हुए हैं,
धान की फसल की कटाई में

आग लगी है।
गेहूँ उगने से इनकारी है
सहम गया है ट्यूबवेल का पानी।
खूँटे से बँधी भैंस गायें
दूध देने से हट गई हैं।
दूध पीती बिल्ली थैली से बाहर आई है।
हलवाहों चरवाहों ने अर्थशास्त्र पढ़े हैं।
बिना स्कूल कालेज की कक्षाओं में गए
फर फर अर्थाते हैं सत्ता का व्याकरण।

फ़िकरे जुड़ें न जुड़ें अर्थ कतार दर कतार खड़े हैं।
पहली बार अर्थों ने शब्दों को
कटघरे में खड़ा कर लाजवाब किया है।

अंबर के तारों की छाँव में
मुद्दत बाद देखे हैं बेटे बेटियाँ
लंगर पकाते परोसते।
सूरज और चंद्रमा ने एक ही तरह से
बेरहम तारामंडल नज़दीक से देखा है।
कंबल की ठंडवाले महीने में आग दहकती है।
पसीने से भीगा है पूरा तन बदन।

झंडे के आगे झंडियाँ मुजरिम बनी हैं।
चौकीदारों को सवालों ने बींधा है
बिना तीर तलवार।
गोदी बैठे लाडले अक्षर
बेयकीनी हुए हैं चौरस्तों पर।
सवालों का कद बढ़ गया जवाबों से।
पहली बार तथ्य बोले हैं बेबाक होकर
धरतीपुत्रों ने सवा सौ साल बाद पगड़ी सँभाली है
जोत-खेत की सलामती के लिए।
×××

नेता जी ने मुझसे पूछा

मँहगे खद्दर के कुर्ते पाज़ामे वाले
नेताजी ने मुझसे पूछा कौन हैं यह लोग?
अचानक कुकुरमुत्तों-से घूरों पर उगे
कुश के शूलों जैसे शीशे की किरचों जैसे
बहुत तीखा बोलते हैं हमारे ख़िलाफ
तुम लोगों के बीच में रहते हो, बताना।
यह देश की सुरक्षा के लिए
ख़तरा बन सकते हैं किसी दिन।

मैं कुछ न बोला, चुप रहा, फिर सँभला
न अस्थिर हुआ और प्रत्युत्तर में कहा,
शीशा दिखाने आए हैं यह लोग
तुम्हारे अलगाए किनारे हैं
इनको अपने नहीं देश हित प्यारे हैं।

सलवटदार नीली पगड़ी वाले भी आए
आँखों पर काली ऐनक लगाए
सफ़ेद विलायती बूटों वाले।
उन्होंने कुछ न पूछा, सिर्फ़ इतना कहा,
काँटों से कहो, हमारी राह से हट जाएँ
नहीं तो हमें हटाना आता है।

नेताजी के उड़नखटोले का धरती पर उतारा है।
हट जाओ दूर, यदि चाम प्यारा है
मैं हँसा, पर उनके जाने के बाद।
फिर वह दोनों इकट्ठे आए।
बहुत कुछ साथ लाए।

रुतबे, मर्तबे, कुर्सियाँ
सोना चाँदी, झूले पालने
और और चमकीला बहुत कुछ।
कहने लगे अब बोल!
बोलने का क्या लेगा?

तेरी चुप तुझे मँहगी पड़ सकती है।
यह आख़िरी मौका है।
पत्थर हो जाएगा।
मैंने कहा, राह का पत्थर नहीं
मील का पत्थर बनूँगा।
सुनो यदि सुन सकते हो।

बेगाने नहीं यह
यह वही लोग हैं
हाशिए से बाहर धकेले हुए।
वही हैं मुद्दतों से अके थके।
जिनको देखकर आप हो हक्के बक्के।

जिनके स्कूलों में टाट नदारद
बैठने के लिए बोरियाँ
घर से लाने वाले।
कच्ची लस्सी समझते हैं
जिनको पढ़ाने वाले।
जिनके कमरों में उमस
और दुर्गंध।
जिनके अस्पतालों में कुछ नहीं
जीवन डोर लम्बी करने वाला।
दर्दों की लम्बी शृंखला
घर से चिता तक।
यह वही लोग हैं
तेज़ रफ़्तार सड़कों से भगाए हुए।

जिनका पैदल पथ और फुटपाथ
कब्जाधारियों के पास गिरवी है
तुम्हारी शह की बदौलत।

यह वही लम्बे-ऊँचे लोग हैं
जो हेलीकाप्टर में से देखते
बहुत नन्हे लगते हैं।
अब जवान हो गए हैं यह लोग।
अभी तक सिकुड़े बैठे थे।

कहीं बाहर से नहीं आए
वही उठे हैं
तुम्हारी बेरुखी के ख़िलाफ़
तुम्हारी सूची के आकड़े
अब खुदपरस्त हस्ती बन गए हैं।
रेंगने वाले नहीं रहे
उड़ते नाग बन गए हैं।
तुम्हारी नीली पीली और लाल बत्तियों
और हूटरों के सताए हुए।
काली ऐनकों में से तुम्हें
यह काले, पीले दिखते
शरीर भी इनसान हैं।
टंकियों पर चढ़ने वाले
हर मौसम में हक़ माँगते
तिल तिल कर मरने वाले
लाठियाँ, गोलियाँ और बौछारें
नंगी देह पर झेलने वाले
अपने ही भाई बंधु हैं।
अब मुझसे क्या पूछते हो?
धरती पर उतरो, ओ कुर्सी के पुत्रों।
×××

वह कुछ भी कर सकते हैं

वह कुछ भी कर सकते हैं।
रांझे की वंशी से लेकर
कन्हैया की बाँसुरी तोड़ने तक।

मेरे सुरों को
कंठ में ही दफनाने से लेकर
साँसों को कशीदने तक।
खीझे हुए हैं
कुछ भी कर सकते हैं।

जुनून के बुख़ार में
इंसाफ का तराजू तोड़ कर
पलड़े को औंधे मुँह मार सकते हैं
कचहरियों में तारीख भुगतने आई
द्रोपदी का चीरहरण कर सकते हैं।

यह न कौरव हैं न पांडव।
यह तांडवपंथी
तमाशबीन हैं।
चिड़िया की मौत पर, गँवारों-सा हँसते हँसते
यह कुछ भी कर सकते हैं।

किसके वकील हैं यह?
जो न दलील सुनते हैं
न अपील बाँचते हैं।

नई नस्ल के महाबली
कौन सी भाषा/बोली बोलते हैं।
जो हमें भी सिखाना चाहते हैं।
तीर तलवार हथियार
मुँह में अगन
हर पल ही लगन
यह मनाने की ज़िद करते।
कि यह आर्यावर्त्त हमारा है
भारत देश हमारा।
बो रहे बेगानगी की फसल।
भूल गए हैं
बहुत मुश्किल होगी बाद में काटनी
बेविश्वासी की फ़सल।
यदि यह वतन
सिर्फ़ इनका है
तो हमारा कौन सा है?

जहाँ कुछ सुनिए कुछ कहिए की धुन सुनी।

सावधान!
यह कुर्सी के लिए
कुछ भी कर सकते हैं।
मर नहीं मार सकते हैं।
डुबोकर अस्थियाँ तार सकते हैं।
कुछ भी कर सकते हैं।
×××

आ गई प्रभात फेरी

नींद खुली है
पटाखे चल रहे हैं
शबद पवित्र गैरहाज़िर
सुन लो क्या कह रहा है।

न कहीं वह सहजता
न धुनकार ही है।
आकाश में कडुवा धुँआ
जल भी गंदला-सा
धरती पर कृतघ्नता भार है।

मेरा मन ननकाने*-सा।
बहुत अकेला
सोचकर बड़ा उदास है!

मेरा बाबा* रोज़ मुझसे पूछता है।
मैंने तेरे कर्तारपुर में
ध्यान के ख़ातिर शबद पवित्र बोया था
यह भला कौन सी फ़सल है।

मन के नाचते मोर की जगह
शोर वाली
भटकती फिरती है आज भी आत्मा
मन में
काली घटा घनघोर वाली।

साज़ और आवाज़ यही बोलते हैं
लौट आ बाबा गुरु तू लौट आ।
मैंने तो अपना स्व सारा
शबद में ढाला था।
काली अँधेरी रात थी
जब शिखर पर
सूरज-सा सच्चा शबद
प्रकाशवान दीवा बाला था।

सफ़र पर चढ़े निरंतर
सिद्ध जोगी नाथ सारे कनफटे
जो चढ़े ऊँची पहाड़ी
ज्ञान के बड़े धुरंधर!
धरती पर उतारे ज़िंदगी में
अमल की राह पर डाले
मैं भला कहाँ गया हूँ।

शबद में मैं ही हूँ हाज़िर
मन के काले खोट वालों को
बहुत गाढ़ा लिख कहा था!
तीरथ में स्नान करते
मन की मैल उतारो।
जग जीतने के लिए
मन के भीतर झाँको
गोष्ठियों के दौरान मैंने तो
वृत्तियों के जंगली
जो धरती की ओर मोड़े।
फिर अब लगते भगोड़े।
सुख सहूलियत वाले जंगल की ओर
सरपट दौड़े।

* गुरु नानक का जन्म स्थल।

* गुरु नानक

मैं तो नित्य प्रभात वेला
राग आशा का गान करता हूँ!
फिर मुझे ही आवाज़ लगाते हो!
यह भला किसको यह इस तरह चराते हो?
× × ×

मिलो तो यूं मिलो

मिलो तो यूं मिलो
जैसे फूलों को रंग मिलते हैं।
रंगों को खुशबू
और खुशबू को एहसास।

मिलो तो यूं मिलो
जैसे तपती धरती को
पानी मिलता है।
जैसे बिरहन को सुहाग।
पवित्र कंठ को राग।

मिलो तो यूं मिलो
जैसे वृक्ष को हवा मिलती है।
पत्तों में से गीत गाती लाँघती
हदों सरहदों से आर पार।

मिलो तो यूं मिलो
जैसे अलग ही नहीं थे कभी।
साँसों में घुल जाओ
जैसे पहली झलक।

मिलो तो यूं मिलो
जैसे रूप के दुपहरे,
दरस-प्यासे को
अचानक सजन मिल जाए।

मिलो तो यूं मिलो
जैसे धड़कन को उच्छ्वास मिलता है।
बेरोक टोक,
नंगे धड़ निर्वस्त्र होकर।

मिलो तो यूं मिलो
कि
वक्त ठहर जाए।
कलाई पर बँधी घड़ियाँ
दुश्मन लगें।

मिलो तो यूं मिलो
कि सदियों से साथ हैं।
साथ साथ चलते
हमकदम हमराज़
एक सुर एक आवाज़।

मिलो तो यूं मिलो
जैसे ढलती शामों में
धरती को आसमान मिलता है।
गोधूली में सूरज अस्त होता है
सवेरे फिर मिलने की तरह।

यह कहते अब जाने दो
फिर मिलेंगे।
×××

धर्म परिवर्तन

धर्म परिवर्तन
इस तरह नहीं होता माँ।

माँ ने छःसाल के पुत्र को
झिड़कते हुए कहा,
नालायक!
तू भंगियों के घर की
रोटी खा गया।
अब तू भंगी हो गया।
तूने अपना
धर्म भ्रष्ट कर लिया
तेरा क्या किया जाए?

मासूम बच्चा
बड़ी मासूमियत से बोला
माँ, मैंने सिर्फ़ एक बार
उनके घर की रोटी खा ली
तो मैं भंगी हो गया!
पर वह तो
हमारे घर की
बासी रोटी रोज़ खाते हैं,
वह तो ब्राह्मण नहीं हुए।
यह कहकर बच्चा सिसक पड़ा।

चुप कराती माँ ने

सिर्फ़ इतना कहा
तेरे तक पहुँचने के लिए
मुझे अभी बहुत वक्त लगेगा।

मुझे तेरे घर जन्मना पड़ेगा
जी वै पुत्र जी
नन्हे!
तेरी बड़ी सोच को सलाम।
×××

परवेज़ संधू

परवेज़ संधू कहानी लिखती नहीं सुनाती है।
छोटे छोटे वाक्यों शब्दों के स्वैटर बुनती
रिश्तों के धागे जोड़ जोड़ कर गरमाहट बख़्शती।
धुर भीतर बैठी मासूम बच्ची से कहती
तू बोलती क्यों नहीं? सच सच बता दे सब कुछ।
कड़ुवा कसैला, दम घोटू धुँए जैसा।
सोन परी की अंतरपीड़ा
यदि तू नहीं सुनाएगी
तो मर जाएगी।
मर न, सुना दे बेबाकी से।
सुनने वालों को शीशा दिखा।
अपराधमुक्त हो जा।
इतना भार उठा कर कैसे चलेगी।
कहानी लिखती नहीं परवेज़ पिघलती है
तरल लोहे के भाँति मन की कुठाली में
इस्पात उड़ेलती है।
कलमों, कहानियों, कविताओं की तरह।
सोई लगती है पर दिन रात जागती
जगत तमाशा देखती दिखाती दर्द की देवी की तरह।
उसके धुर भीतर
कब्रें दर कब्रें हैं।
कतारो-कतार चुपचाप।
गुम सुम रहतीं साथ साथ पास पास
जा जा बैठतीं चुप वाले कोड़े की
मार सहतीं। पर जब बोलतीं

परत दर परत
एक एक कसी गाँठ
सहजता से खोलतीं।
परवेज़ की कहानी में बड़ा संसार।
उड़ते परिंदों की पर कटी डार।
बेगाने-से देश में सजन के भेष में
अपने ही मारते हैं।
जान लेने वाली तीखी कटार कैसी मारो मार
जीत है न हार।
परवेज़ की कहानी,
किस्सा सुनाने के तरीके की तरह।
मीठी मीठी डाँट,
सुनाने के सलीके की तरह।
शब्द शब्द वाक्य वाक्य,
तरल लोहा जिस्म लाँघे,
सोच शृंखला से आर पार।
नन्हे नन्हे कदम चलती
छीजने के बाद,
मगन मिट्टी फिर जुड़ती।
पीसती चक्की में आपा
दर्द गूँधती तवा तपाती।
धीमी धीमी आँच पर रोटी उतारती और खिलाती।

तितली-सी सबीना हर साँस के साथ चलती।
बात करती किस्सा सुनाती।
सपनों जैसे पंख लगाकर चली गई गाथा सुनाती।
मनका मनका माला फेरती याद आती।
परवेज़ कहानी नहीं लिखती सुनाती है चिट्ठी की तरह।
लिखतुम परवेज़ पढ़तुम सारे।
शब्द सँवारे।
धरती परिंदे इसकी आज्ञा में बैठते सारे।
×××

अब दुश्मन ने भेष बदला

सरहदों की रखवाली कर रहे
हाथ और हथियार भी
बेकार होकर बैठ गए।
नए नवेले दुश्मन से पाने को त्राण
पूरी दुनिया के लोग
फ़िक्रों से घिर कर बैठ गए।

कुल आलम ने विश्वयुद्ध दो, आँखों से देखा
यह तीसरा आदमखोर विश्वयुद्ध
कौन इससे किस तरह टकरे।
बन गए सब बलि के बकरे।
अब दुश्मन ने बदला भेष।

हम तो इस अहंकार में
अब तक रहे थे खोए
हमारे हाथ में बम परमाणु।
यह रखवाला बन हमारे सिर पर
जंग-युद्ध में छतरी तानेगा
पर यह कहाँ से कौन सा दुश्मन आया
नाम कोरोना रोग विषाणु।

घर के भीतर पूरी धरती पर
अंदर बैठ कर सोच विचारो।
अंतस में अपने तनिक दृष्टि तो डालो।
अब हदों सरहदों से भी

बिना बुलाए लँघता दुश्मन।
रंग नस्ल यह देश न देखे।
रुतबा, कुर्सी, भेष न देखे।
दाब लेता है जागते सोते।
इस दुश्मन की नस्ल पहचानो
आदमजात की पीड़ा जानो।

कुल दुनिया की ख़ैर मनाएँ
ज्ञान और विज्ञान सहारे,
इस वैरी को मार भगाएँ।
नफ़रत की आग खेल खेल कर
आज तक किसने क्या पाया है।
×××

किधर गए असवार

जिनको था भ्रम भुलेखा,
हम हैं वक्त पर सवार
वक्त हमसे पूछ कर चलता,
बहती है दरिया की धार।

वृक्षों के पात हिलाएँ हम।
भ्रम सृजते, बड़के दावेदार।
कहते थे जो बाँध बिठाएँ
धरती, सूरज, आग औ' पानी
पवन को गाँठें मार।
किधर गए असवार।

कहाँ गया रौनक मेला
सफ़र सवारी जगत झमेला।
एक ही भाव गुरु और चेला।
तहख़ानों में दुबके सारे
भीतर से बंद कर द्वार।
किधर गए असवार।

बस से पूछते चारों पहिए।
बिन घूमे कैसे बेकाम के रहिए।
इस मौसम को बता क्या कहिए।
कहर कोरोने ने साँस सुखाए,
किस तरह ब्रेकें मार।
किधर गए असवार।

यह बात मेरी पल्ले बाँधना।
बाकी चाहे एक न मानना।
सब्र से संकट को टालना।
कष्ट घड़ी भर है धरती पर,
दिल न जाना हार।
कष्ट परखता सदा शूरता
सिर पर रख तलवार।
×××

अनुवाद : राजेन्द्र तिवारी

अनुवादक प्रदीप सिंह द्वारा अनूदित :

दर्दनामा

बीता दिन
मुबारक नहीं था
रक्तरंजित था
टुकड़े टुकड़े बोटी बोटी
फ़र्ज़ थे सारी सड़क पर फैले
टूटे दिये बिखरे थे
आस-उम्मीदों वाले
जरूरतों खातिर कच्चे आँगनों ने
भेजा था बेटों को करने कमाई
ये क्यों घर को लाशें आई
सफेद दुपट्टे देते दुहाई

मेरे हाथ में
अमन का परचम
सच पूछो तो डोल रहा है
ज़हरी नाग जगा अचानक
रूह के अंदर बैठा था जो
बा-मुश्किल सुलाया था मैंने
जाग गया है ज़हर उगलता
ये ज़हरी क्यों मरता नहीं है

हदें-सरहदें सारी
आदमखोर चुड़ैले

ज्यों जंग और गरीबी
सगी हैं दोनों बहनें
बार बार ये खेलें होली
कुर्सी और सरकारें
बोलें एक ही बोली
सीधे मुँह न कोई उत्तर
खा रही है हमारे पुत्र

लाश लपेटने के काम
आते कौमी झंडे
हुकुम हुकूमत व्यस्त खाने में
हलवे-पूरी, अंडे

ओ धरती के बेटों-बेटियों
आदम की संतानों
पूरे आलम को
चीत्कारों में छुपा दर्द
सुनाओ और समझा दो
रावी और झेलम का पानी
उकताया सुन सुन दर्द कहानी
इधर या उधर
अब लाशों के अंबार न लगाओ

नफ़रत की आग सदा जलाती
सपने सुनहरे सहेजे
चूल्हों में घास उगाती
करे बंद दरवाजे

ये मारक हथियार फाड़ते
हमारे प्यारे बस्ते
बम्ब-बंदूके खा रही
प्यार, चौरस्ते

कुचले सुर्ख गुलाबों को
न समझें हाथी मस्ते

ओ बंजारों! लाशों वालों
आँख से काली ऐनक हटाओ
कैसे छाती पीट कर रोती
माएँ, बहनें, बेटियाँ
सूखा रहे हो क्यों सबका हिया

तड़क रहे रंग-रँगीले चूड़े और कलीरे
लिपट तिरंगे में
सोए नींद अटूट
जिस बहन के वीरे
सरहदों के आर-पार
ये आवाज़ लगाओ
जात-धर्म के पट्टे हटाओ बर्खुरदारों,
अपना भविष्य खुद सँवारो
अंधे बहरे तख्त-ताज़ तक ये आवाज़ पहुँचाओ

श्मशानों की जलती मिट्टी पुकारे
धरती को न लम्बी सी कोई कब्र बनाओ
होश में आओ।
बाग उजाड़ने वालो सोचो।
बच्चों के मुँह चूरी की जगह
जलते सुर्ख अंगार न डालो!

शीशा

दिन निकलते ही
लोग अब नहीं पूछते
अपने दुख-सुख का इलाज

अपना मुंह धोने से पहले
पूछते हैं
कश्मीर का क्या हुआ?
भूल गए हैं सब
हमारा तुम्हारा क्या हुआ?

सट्टेबाज से
दिहाड़ीदार तक
व्यस्त हैं सभी
मंडियों के भाव जानने में।

रसूल हमजातोव ने
सही कहा था
बच्चे की सुन्नत के लिए
बत्तख के पंख बहुत जरूरी हैं।
पर आप
बतख के पंख से
सुन्नत नहीं कर सकते।
उसके लिए चाहिए उस्तरा।
किसी ने पूछा
फिर बत्तख का पंख

किस काम आएगा?
उसने कहा
बच्चे का ध्यान बंटाने के लिए।
पर दोस्तों
इसे कविता न समझना
ये शीशा है
जिसमें मुझे आपको हम सब को
देखना बनता है जनाब।
×××

बहुत याद आती है लालटेन

कच्चे कमरों में बहुत कुछ था
रौशनी के बिना
सूरज छिपता तो
संध्या समय मन डूबता।
प्रकाश तो खर्च
हो जाता था शाम के खेल में।
खाली पड़े खेतों में खिदो-खुंडी के दौर चलते
गोबर-कूड़े में खिदो (गेंद) खोती
तो शिकारियों की तरह ढूंढ़ते फिरते।
घर आते तो माँ कहती
पहले नहाओ
स्कूल का काम निपटाओ
खाना तभी मिलेगा।

दिए की लौ झूमती
पतंगे नाचते इर्द-गिर्द।
एक ही दिया रसोई में जलता।
चौका-बर्तन समेटकर ही
दिया मिलता काँपता-काँपता।
नींद आँखें कब्जा डेरे डाल लेती
शब्द आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे।
दिया दुश्मन सा लगता।
घर में मेज नहीं थी
ऊँची सेल्फ पर जगमगाता
ज्ञान दूत यमदूत लगता
नींद का वैरी।

दिए को बढ़ा माँ कहती
अब सो जा,
सुबह उठ जाना पशु निआरने के समय।

फिर जब घर में लालटेन आई
घर रौशन हो उठा
पिता जी कहते
अब तो चींटी भी चलती दिखती है।
प्रकाश में किताबें कहती
आ जा बातें करें
पन्ना-पन्ना शब्द-शब्द
पंक्ति दर पंक्ति।
मिट्टी का तेल जलता तो काला धुँआ
नांक में घुसता कड़वा-कसैला सा।
चिमनी में कालिख जमती
तो दादी जी
चुन्नी के फटे कपड़े से साफ करते।
धुंधले अक्षर जगमग करते।
नूर-सरोवर में सपने तैरते।
कच्चे आँगन में इच्छाएं उगती
हिम्मत के पानी से उन्हें माँ-बाप सींचते
बड़े बहन भाई पके दूध को विश्वास जामण लगा जमाते।
लालटेन ने मेरा संसार बदल दिया।
इसके आसपास जगने से
मुझे सुंदर सपने आते।
सोए को फिर जगाते।
प्रकाश दोस्त बन गया
लालटेन के आने से।

बिजली आई तो पिता जी ने
दूर खड़े हो कर डंडे से जगाई

किसी ने कहा था
हरनाम सिंह पास मत जाना
पकड़ लेती है ये डायन।
तब पता ही नहीं था कि
अंधेरा कितना शातिर है
इंसान के रूप में आता है
भोले लोगों को डराता है।
प्रकाश नहीं सहता
भ्रमजाल फैलाता है।
बिजली के लट्टू से
कितना कुछ निकला
ग़ज़ल दर ग़ज़ल रौशनी की लड़ी।
इसने ही हमारी उंगलियाँ पकड़ी
माथे पर गहरी लकीरें जड़ी।
अब हर कमरे में दो-दो तीन-तीन
ट्यूबें जगती,
पर ख्वाब नहीं आते।
कंक्रीट कितना बेरहम जंगल है
कमरों में कैद कर देता है
सितारों से नहीं मिलने देता
लालटेन से कितना कुछ/ मिला-मिलाया छीन लेता है
संयुक्त-परिवार साझे आदर्श और सपने।
छतों से जुड़ी छतें
बातें हुंगारे, टिमटिमाते तारे।
बड़ा जालिम है रूखा सूखा संसार।
कच्चे आँगन, दिए लालटेनें
और भी बहुत कुछ भुला देता है।
सपने जड़ से सुखा देता है।
धरती आकाश भुला देता है।
सब कुछ होते हुए भी।

(खिदो-खुंडी=पंजाब का एक लोक खेल जिसका विकसित रूप हॉकी है)

दीपिका पादुकोण के जेएनयू के जख़्मियों को मिलने पर

अगर तुम
सिनेमा स्क्रीन से उतर
हक़ सच इंसाफ के लिए लड़ती
बंगाल की बेटी 'आईशी घोष' का
यूनिवर्सिटी जाकर
जख़्मी माथा नहीं चूमती
तो मुझे भ्रम रह जाता
कि माँ-बाप द्वारा रखे नाम
निरर्थक होते हैं।
दीपिका!
जलती लौ जैसी!
तुम सच में प्रकाश पुत्री हो।
तुम्हारा निहत्थे बच्चों के पास जाना
हमदर्द बन उठना-बैठना
उस विश्वास की झलक है
जो कहीं खो रहा है दिन-बदिन
ऐसा लगा!
मंडी में सब कुछ बिकाऊ नहीं।
सर्दियों के दिन हैं
बाजारों में मूंगफली के ढेर लगे हैं
धड़ा-धड़ तुलते बिकते।
हे मँहगे बादामों सी बेटी!
मंडी का माल न बनने का शुक्रिया।

‘आईसी घोष’ के माथे के ज़ख़्म
तुम्हारे चूमते ही सूखने लगे हैं।
अनकहा नारा अंबर तक
गूंज उठा है चहुँ ओर।
“त्रिशुलों, तलवारों, चाकुओं
के जमघट में घिरे
हम अकेले नहीं हैं।
बहुत लोग हैं।
अकेले नहीं हैं जंगल में।”

काला टीका

उनके माथों पर
ज़हर बुझे त्रिशूल थे।
हाथों में
नश्तर, खंज़र, किरचें और बरछे
दिलों में विषैले पौधे थे।
विश्वविद्यालय की
दीवार फाँद कर नहीं
अतिथियों की तरह आए
आमंत्रित नकाबपोश।

वे
पढ़ने-पढ़ाने वाले
पुस्तकें लिखने-लिखाने वाले
दिशा देखने-दिखाने वाले
रौशन चिरागों पर झपटे।

रात ने ये तांडव आँखों से देखा
लहूलुहान था चाँद
आँखें बंद थी तारों की
मटमैली सी सुबह
उगता सूरज शर्मिंदा था
दिन के माथे काला टीका देख कर।

आज उदास हैं पुस्तकें
सुबकते हैं हर्फ़

ज़ख़्मी माथों पर पट्टियां हैं
और इस माहौल में
छिपती फिरती है
मेरी कविता शब्दों के पीछे।
बेबस परिंदे सी फड़फड़ाती
ढूंढ़ती है हमनस्ल उडार
पर वो आर न पार
जाने कहां गए सब पवनसवार।

ये तो महज़ फ़िल्म का ट्रेलर है
पूरी फ़िल्म
निकट भविष्य में देख सकेंगे।

पत्थर! तू भगवान बनकर

पत्थर! तू भगवान बनकर मंदिर में जम जाएगा।
तेरी पूजा अर्चना होगी, मेरे हाथ दुख ही आएगा।
शूद्र था मैं आज भी शूद्र, तुझे तराशने वाला मैं
हे भगवान! पुजारी मुझे फिर भी अछूत कह जाएगा।

बिगड़ता जाता वातावरण

बिगड़ता जाता वातावरण
आ जगाएं
कुछ विश्वास
बहुत ज़रूरी है
अब तो उगे खुशियां बाँटती आस

मन परदेसी
डोलता जाए
घर न लौटे
दिन-दिन बढ़ता जाए
कैसा अजब बनवास

अपनी जमीन
पराई लगे है
नज़र भी
पथराई लगे है
कंक्रीट के जंगल में
लगे है नहीं किसी का वास

चतुर करे चतुराई
प्यार दिखाए
जिस्म पुचकारे
मौका पाकर ऐसा डसे है
रूह ढोए है अपनी लाश

उपजाऊ धरा हुई है बंजर
उजड़े सपनों के बागीचे
पेड़ों से लटकते
आँसू
निगल लिया है सल्फॉस

शैतान की शैतानी देखो
पालतू किया
विज्ञान
गमले में उगाया उसने
बिन हड्डियों का मांस

खुद को ऊंचा कहने वाली
अमरबेल ये
फैलती जाए
ऐसे तो मिट जाएगा
अपना गंगा-यमुनी इतिहास

डार्विन झूठ बोलता है

हम विकसित बंदर से नहीं
भेड़ से हुए हैं
भेड़ थे
भेड़ हैं
और भेड़ रहेंगे
जब तक हमें हमारी ऊन की
कीमत पता नहीं चलती।
हमें चराने वाला ही हमें काटता है।
बंदर तो बाज़ार में खरीद-फरोख्त करता
कारोबारी है।
बिना कुछ खर्च किए
मुनाफे का अधिकारी है।
हम दुश्मन नहीं पहचानते
हमारी सोच मरी है।
डर्विन से कहो!
अपने विकासवादी सिद्धांत की
फिर समीक्षा करे!
कि वक्त बदल गया है।

जाग रही है माँ अभी

सो गई है सारी धरा
रुक गए बहते दरिया
बात हो गई बेजवाब
दूर कहीं टिटहरी बोलती है
चुप गलियों में पसरी है
आदम पद्‌चाप
जाग रही है माँ अभी

चूल्हा-चौका साज-संभाल के
दूध को जामण लगा
टोकरे नीचे रख आई है
कुत्ते-बिल्लियों का डर है
कहीं पी न जाएं वे
लालटेन की रौशनी में
किताब के पन्नों में
जाने क्या देखती है
शायद
बेटे की भाग्य रेखा
बेटी के अगले घर का नक्शा
मायके की सुख-शांति
ससुराल की खुशहाली के विस्तृत लेख

अनपढ़ होकर भी
कितना कुछ पढ़ती जाती है
चश्में में से

सारे संसार से रिश्ता जोड़ती
पेंसिल के निशानों को
ध्यान से बाँचती
पढ़े हुए को परखती-जाँचती
जाग रही है माँ अभी।

दादी बनकर भी जागती है अब भी
आकाश के तारे नहीं देखती
अक्षरों में
आँख के तारों के
सितारे पहचान रही है
माँ जाग रही है अभी।

जिन घरों में सो जातीं माँएँ
उन घरों को
जगाने वाला कोई नहीं होता
ईश्वर भी नहीं
माँ ईश्वर से बड़ा ईश्वर है
पृथ्वी सा बड़ा दिल
अंबर से बड़ी नज़र
सागर से गहरी आस्था
हवाओं से तेज उड़ान
चंदन के बाग की
महकती बहार है

पिता तो राजा है
घर की
छोटी-मोटी जरूरतों से बेखबर
खुद को हुक्मरां समझता है
वैसा ही लापरवाह
बच्चों के बस्ते से बेख़बर
शाहंशाह-ए-हिंद

देस-परदेस की चिंताओं में घुलता जाए
गोटियों से खेलता
उल्टी सीधी चालें चलता है तिकड़मबाज़
इंसान को पहले आँकड़ों में बदलकर
शतरंज खेलता
दिन रात बिताता है

ये तो माँ ही है
जो धरती की तरह सबके
गुण-दोष ढाँपती
रोते को चुप करवाती
पलकों पर बिठाती
अपने मुँह से अपने लिए
कुछ नहीं माँगती
माँ जब तक जागती है
लालटेन भी नहीं बुझने देती
बेटी-बेटे और समस्त संसार के लिए
जाग रही है माँ अभी।

नंदो बाजीगरनी

सुई छोटी बड़ी, फरई की
आवाज़ लगाती नंदो बाजीगरनी
अब हमारे
गाँव की गलियों से कभी नहीं गुज़रती
शायद मर गई होगी
छोटी बच्चियों के कान-नाक छेदकर
पिरो देती थी झाड़ू का पाक-साफ़ तिनका
कहती
सरसों के तेल में हल्दी मिलाकर
लगाते रहना
अगली बार आती तो
पीतल के कोके, बालियां
कानों में डालकर कहती
बेटी
बड़ी हो गई।

नंदो औरतों की आधी वैद्य थी
पेट दुखने पर चूरन
आँख आने पर काजल डालती
खरल में काजल पीसती
सबके सामने
रड़कने लायक कुछ नहीं छोड़ती
धरन पड़ी हो तो
पेट मलते हुए कहती
कौड़ी हिल गई है

वजन मत उठाना बीबी जी
पैरों के बल बैठ के
दूध न निकालना।
बहुत कुछ जानती थी नंदो
आधी-अधूरी धनवंतरि वैद्य ही थी।

नंदो बाजीगरनी
बिन बैटरी के चलता रेडियो थी
चलता फिरता
बिना शब्दों का लोकल ख़बरों वाला अख़बार थी।
नंदो की चादर में
सिमटे थे बीस तीस गाँव
पूछती सबसे सबका सुख-दुख, अपना कभी न कहती।
दिये की लौ सी चमकती आँखों वाली नंदो
भले-बुरे का भेद समझती
सारे गाँव को
नियत की बदनियत और शुभनियत के बारे में आगाह करती।

नंदो न होती तो
कितनी ही बहन-बेटियाँ
कोरी चादर पर
मोर, कबूतरी की
कढ़ाई करनी सीख न पातीं।
वो धिआनपुर से
पक्के रंग वाले
मजबूत धागों के लच्छे लाती

माँ से लस्सी का गिलास पकड़ते
रात की बची रोटी ही माँगती
ताजी पकी कभी नहीं खाती
कहती! आदत बिगड़ जाती है
बहन तेज कौरे

हर गाँव में तो नहीं हैं न तेरे जैसी।
चौके में माँ के पास बैठी
बच्चों का माथा
गौर से देखकर कहती
स्कूल नहीं गया? बुखार है।
चरखे की फरई से कालिख ले
मुझ जैसों के कान के पीछे लगा
कहती 'बुखार की ऐसी की तैसी'
रास्ता भूल जाएगा बेटा ताप।
सुबह शरीर फूल सा हल्का होता
मैं चल पड़ता स्कूल बस्ता उठाए।
मोटी सिलाई से बनी नंदो की
बगल पोटली में पूरा संसार था।
हर एक के लिए कुछ न कुछ अलग
प्रेमियों के लिए पीतल की अंगूठियां-छल्ले
छोटे बच्चों के लिए
चावलों वाले झुनझुने, पीपनियों, बाजे
दीन शाह की कुटिया वाले बाग से
लाए मोतिये के सुच्चे पुष्प हार
मेरी माँ को देकर कहती
महकता रहे तेरा परिवार गुलज़ार
दुआएँ बाँटती बिना दाम।
मुट्ठी-मुट्ठी भर आटे से
भरती अपनी पोटली,
बाँटती कितना कुछ।
घास के तिनकों से
अँगूठी बुनना
मुझे उसी ने सिखाया था।
किताबों ने वो हुनर तो भुलवा दिया
पर अब मैं शब्द बुनता हूँ
अक्षर-अक्षर घास के तिनकों से।
नंदो का कोई गाँव नहीं था

बेनाम टपरियां थी।
शीर्षक नहीं था कोई
पर नंदो बंजारन
घर-घर की कहानी थी।
हमारे स्कूल के पास ही थी
नंदो की टपरियां
पर एक भी बच्चा स्कूल नहीं आता था।
सदा कहती,
हमारी झोपड़ियाँ तोड़ कर बनी
हमारी निशानी बरगद ही है बस
बाकी सब कुछ पैसे वालों का।
ज्ञान के नाम पर दुकानें
गरीबों की दुश्वारियां और दंड।
हमारे लोग तो
इसके नलके से पानी भी नहीं भरते।
तलैया का पानी मंजूर,
ये ज़हर सा लगता है हमें।
हमारी अपनी भाषा है भाई
ये स्कूल हमारी बोली बिगाड़ देगा।
बच्चों को भुलवा देगा बाजीगिरी।
सुडौल जिस्म के सपने को कोढ़ कर देगा।
तांगे में जुता घोड़ा बना
चारों तरफ देखने से रोक देगा।

नंदो बताया करती हम बाजीगरों की अपनी पंचायत है सरदारों
हम तुम्हारी कचहरियों में
नहीं चढ़ते।
हमारे बुजुर्ग इंसाफ करते हैं
फैसले नहीं।
तुम्हारी अदालतों में फैसले होते हैं।
सूरज गवाह है
अँधेरा उतरने से पहले

टपरियों में हमारा पहुँचना ज़रूरी है।
रात हुई तो बस बात गई,
अक्सर इतना सा कहकर
वो बहुत कुछ समझा जाती।
पर हमें कुछ समझ न आता।
बताते हैं
नंदो की टपरियों, झुग्गियाँ का
पंचायती नाम
लालपुरा रखा है।
पर वो अब भी
बाजीगरों की बस्ती कहलाती है।
बरसों पुरानी नंदो मर चुकी है
पर बेटे तो ज़िंदा हैं।

जो बच्चा बोलता तो

जो बच्चा बोलता तो
कहता।
है क्या आपके पास?
मेरे पास स्वप्न हैं तरह-तरह के।
फुटपाथ से लेकर घर तक।
दिल के अरमानों जैसे नक़्शों से
नक्शे बनाऊँगा कोरे पन्नों पर।
मैं इनमें भरूँगा रंग।
सियाह सफेद रंगों से ही
सतरंगी झूला उकेरूँगा।
पिता जैसे
बेगाना जूता चमकाते हैं,
मैं अपना मस्तक चमकाऊँगा।
वक़्त आने दो,
कुछ करके दिखाऊँगा।
पर बच्चा बहुत भोला है,
नहीं जानता,
एकलव्य की रीत
बहुत पुरानी है।
सावधान बच्चे!
जंग इतनी भी आसान नहीं।
दुश्मन पहले से भी
ख़तरनाक हो गया है।

बापूजी कहते थे

बापूजी कहते थे
दिल्ली खुद नहीं उजड़ती
सिर्फ़ उजाड़ती है
छोटे-बड़े गाँव
घर दर चूलें-चौखटें।
खूँटों से खोल देती है
पशु बछड़े
आवारा राजनेताओं के
चरने को
चारागाह बनती है।

दिल्ली कहाँ उजड़ती है?
दिल्ली सिर्फ खसम बदलती है
स्वाद बदलती है जिस्मों के
भटकती फिरती है दर-दर आवारा।
तख्त पर बैठने का चोगा पहनके
ऐरे-गैरे शिकारी
पिंजरे में डाल देती है
सपनों को आवाज़ देती है
बेचती कमाती कुछ नहीं
बड़ी तेज़ है दिल्ली नखराली।

वे अक्सर कहते
इसकी ईंटें न देखो
नियत परखो

नज़र कहाँ है
और निशाना कहीं और।
महाभारत से चलती-चलती
भारत तक पहुँची
अब फिर कूची उठाए घूम रही है
हर कूचे के माथे
हिंदुस्तान लिखने को।
पुराने किले के पास खो गया
हमारा गाँव इंद्रप्रस्थ।

मालिक पांडव कुली बने
रेलवे स्टेशन पर
मर रहे हैं वजन ढोते-ढोते।
हमायूँ किले का मालिक नहीं अब
मकबरे में कैद है
बना फिरता था
बड़ा शहंशाह।

बापूजी ने बताया है
दिल्ली खुद अगर
सात बार उजड़ी
इस ने हमें भी
सैंकड़ों दफा उजाड़ा है।
ये तो फिर बस जाती है
सपने खानी छिनार।

लँगड़ा तैमूर हो या नादिर
फिरंगियों तक लंबी कतार
बिगड़ैल घोड़ों की
कुचलते फिरे जो प्यार से सींचा
फुलकारी सा देस।
अब भी भटकती रूहें
नहीं टिकती।

औरंगज़ेब कब्र से उठकर
आधी रात भी हूटर बजाता गुजरता है
हमारी नींद का दुश्मन
पता नहीं किस लिए
गलियाँ छानता फिरता है?
उजड़े बागों का बातूनी पटवारी।

बापूजी ठीक कहते हैं
लाल किले की प्राचीर
झूठ सुन-सुन उकता, थक गई है
पुरानी किताबें वही सबक
सिर्फ जीभ बदलती है।
झुग्गियाँ बिकती हैं
दो मुट्ठी आटे के बदले
ज़मीरों की मंडी में
नीलाम कुर्सियाँ
अपना जिस्म नहीं बेचती अब
नए खुले सत्ता के जी बी रोड पर
सदाचार बेचती है।

कुर्बानियों वाले पूछते हैं
कौन है ये चापलूस बच्चे?
हाय बहादुर, सरदार बहादुर
कृपाण बहादुर कहाँ गए?
जवाब मिला
हमारे दरबान दरवाजों पर।
दिल और दिल्ली फिर उजड़ती है
जब सुनती है सड़ा सा जवाब
जिन गलों में
जलते हार हैं टायरों के
राज बदले नहीं अभी डायरों के।

दिल्ली कब उजड़ती है?
ये तो उजाड़ती है बागों के बाग
उल्लू बोलते हैं
चेहरे बदल-बदल
वृक्ष डोलता है
पर उजड़ते हम ही क्यों हैं?
दिल्ली तो फिर नया खसम ढूँढ़ लेती है।

बहुत उदास हैं बापूजी ये सब देखके
कि विधवा बस्ती इंसाफ के लिए
तारीखें भुगतती मिट चली है।
आँसुओं और आहों के बंजारे
चुनाव समय बेच लेते हैं चिताएं
फिर तख़्त पर बैठते ही भूल जाते हैं
बूढ़ी माँ की आँख के लिए दवा
बीमार विधवा बेटी के लिए जड़ी-बूटी।

बापूजी ठीक कहते थे
उजड़े दिलों के लिए दिल्ली
तख़्त नहीं तखता है
जहाँ फाँसी पे लटकाए जाते हैं
अब भी सुनहरे ख्वाव।
दिल्ली नहीं उजड़ती
सिर्फ उजाड़ती है।

सूरज की जात नहीं होती

(महाकवि वाल्मीकि जी को स्मरण करते हुए)
उसके हाथ का
मोरपंख कागज़ों पर था नाचता
पन्नों पर थिरकता
इतिहास रचता
पहले महाकवि का निर्माता।
किसी के लिए ऋषी
किसी के लिए महाऋषि
कुचलों बेसहारों के लिए
पहला भगवान था मुक्तिदाता।
स्वाभिमान का ऊँचा दुमंजिला स्तंभ।

न नीचा न ऊँचा
मानसिकता से
बहुत ऊँचा और अलग
रौशन सबक था वक्त के पन्ने पर।
त्रिकालदर्शी माथा
फैल गया चौबीस हज़ार श्लोकों में
घोल कर पूरा खुद को
इतिहास हो गया।

ईसवीं के पहले पन्नों पर
उसने लकीरें नहीं, पदचिन्ह बनाए।
काले अक्षरों ने पूरब को
भगवान दिखाया पहली बार।

ज्ञान सागर का गोताखोर
माणिक मोती ढूँढ-ढूँढ़ पिरोता रहा।
अजब मार्गदर्शक।

उसके कारनामों पर
इबारत लिखना
ख़ाला जी का बाड़ा नहीं है।
सारी दुनिया के कागज़ से बना
छोटा रह गया पन्ना
आदि कवि के समक्ष
समंदर स्याही की दवात।
मोरपंख लिखता रहा
वक़्त के पन्नों पे
अर्थों के अर्थ करते रहो
दोस्तो! सूरज को आप
नहीं बना सकते दिया।

विश्वकीर्ति के चलते ही
सर्वदेसी पाठ बन गए
सर्वकालिक सूर्यालोकित माथा।
धरती की हर ज़बान में
चमचमाता चमकदार ग्रँथ।

सूरज को
किसी भी तरीके से देखो
सूरज ही रहता है
न उतरता न चढ़ता
तुम ही ऊपर नीचे होते हो।
तपते खपते मरने वाले हो
समझाने की कोशिश में इसकी जात।
बच्चे न बनों
सूरज सूरज ही रहता है।

इस की जात नहीं
झलक होती है।
जिधर मुँह करता है
दिन होता है, फूल खिलते हैं।
रँग भरते हैं, राग छिड़ते हैं।
पीठ करे तो लंबी घनेरी रात।

इसे अपने जितना मत करो
लगातार काट-छाँट
ये तुम्हारी मापक मशीनों से
बहुत बड़ा है।
इसमें मनमर्ज़ी के रंग भरते
इसका रंग नहीं
रौशन ढंग होता है
जगमगाने वाला
नूर के घूँट भरो, ध्यान धरो।
अपने जितना छोटा न करो।
रंग, जात, गोत्र, धर्म, नस्ल
से बहुत ऊँचा है कवि आदि कवि
सूरज की जात पात नहीं
सर्वकल्याणकारी औकात होती है
तभी उसके आने पर
प्रभात होती है।

भाशो जब भी बोलता है

मेरा कवि मित्र
भाशो
जब भी फोन करता है
यही बोलता है
सिर्फ़ कुछ बातें ही करनी हैं
ध्यान से सुनना।

फूल गमलों में नहीं
क्यारियों में लगाया करो।
घुटनों बल बैठ
निराई-गुड़ाई करो
घुटनों में दर्द नहीं होगा कभी।
पानी दिया करो
देखो खिलते फूलों को।
क्यारियाँ किताबें बन जाती है।
पन्ना-पन्ना हर्फ़-हर्फ़
पढ़ो
बहुत सबक मिलते हैं।

रात में
नीले अंबर को निहारो
तारों से बात करते
अक्सर
मिल जाते
बिछड़े प्यारे साथी।

सपनों के लिहाफ लपेट
गर्म रहो।
पछतावे की ठंड मार डालती है।
सर्द हवाओं से
बचकर रहना जरूरी है।

चुप न रहो।
कोई जब पास न हो
तो दीवारों से करो गुफ़्तगू।
खुद को
खुद से ही जवाब देना सीखो
खुद से अच्छा कोई साथी नहीं।
आईने से बातचीत किया करो
इंसान चाहे तो
उम्र बाँध सकता है।

छोटे-छोटे बच्चों को
खेलते देखा करो।
छोटी सी दुनिया में
बहुत कुछ है जीने और जानने को
जिया करो।

रंगीन गुब्बारे बेचते
नंगे पांव
गलियों में आवाज़ देते
पिपनी बजाते बच्चों को
बच्चे न समझो।
इन्हें फुरसत नहीं
एक पल भी खेलकूद की।
गोल पहिया रोटी का
लिए घूमता है गली-गली इन्हें
इनके हिस्से की

वर्णमाला
खो गई थी
झुनझुने की उम्र में।

अपने गमगीन साथियों से सावधान!
ये तुम्हारी इच्छाओं वाली
माचिस
नम कर देंगे
अपनी ठंडी आहों से।
न अगन न लगन
सिर्फ़ अलसाए से साये।

उड़ते हुए ख्वाबों को
चाहतों, साँसों में पिरोकर।
कुछ ज़िंदगी के और नज़दीक हो लो।

शब्दों से खेलता इंसान
वृद्ध नहीं होता
कविता लिखा करो।

बड़े भाई साहब!
मैं भी रिटायर हो गया
बच्चे पढ़ाता-पढ़ाता
जिस गाँव में पढ़ाया
वहाँ यही समझ में आया
कि हमारे शहरों से
गाँव अब भी स्वच्छ हैं।
तभी तो जब भी उकता सा जाता हूँ
किसी गाँव में चला जाता हूँ
फसलों से बात करता हूँ
माँगता हूँ मौसम बसंती
सरसों से

कविता में पिरोने को
धूप सेंकता हूँ
कि पिघला सकूँ जज़्बे
चौपाल में बैठ रिश्ते बुनता
सूरज छिपते लौट आता हूँ।
आप भी जाया करो
गाँव
हर गाँव इंतजार में रहता है

नोट करना!
शहर कभी किसी का इंतजार नहीं करते
सिर्फ ठिकाना देता है।
शहर में रह कर भी
मैंने अपने अंदर से गाँव नहीं मरने दिया।
आप भी जिंदा रखना।
कविता
लिखते समय शहर
मेरे हाथ में मछली सा फिसल जाता है।
गाँव बस गया है आत्मा में
आपकी तरह।
सुस्ती कमजात को
फटकने न देना पास
दीमक की
तरह चाट जाती है इंसान के अंदर का उत्साह।
जीने का शौक, उमंग
याद रखो, वक़्त आपका है।
कुत्ते को सैर ही तो नहीं करवाए जा रहे
बच के रहना
संगत असर छोड़ जाती है।
कुत्ते के साथ रहते
हुक्म चलाने की आदत पड़ जाती है।
बच के रहना।

धूप सेका करो!
सूरज से बात किया करो।
बड़ों की संगत से
असीमित उर्जा मिलती है।
सूरज की पिचकारी से
सीखो
फूलों में रंग
भरने का तरीका।
फलों का रसभरा संसार पहचानो।
मेरी
बातों पर गौर करना।

पता हो तो बताना

वो कविता कहाँ गई
जो तुमने लिखी थी कभी।
ये तो वो है जो छपी है
इसमें से जो तुमने काटा
वही तो कविता थी कवि साहब!
वो कहाँ गई।

ताजा दुहे दूध सी थी वो
मक्खन के कणों वाली
पहाड़ी गायों के दूध घी जैसी
ये तो सिर्फ कच्ची लस्सी सी है जनाब
कविता किधर गई।

ये तो टाल पर पड़ी कटी-छाँगी
टहनियों की गठरी है
निरा जलावन सरकार
खाट, पीढ़े, कुर्सियाँ-मेज
इससे नहीं बनते।
ये तो असल वृक्ष की छाँव थीं
अब वृक्ष कहाँ है?
अकेला कर आए हो तने की जात
कितनी ज़ालिम है तेरी औकात
कवि बना फिरता है।
जा कविता ढूँढ़ कर ला
जिसमें सपने थे चिंगारियाँ छोड़ते

छोटे-छोटे अनेकों सूरज
अलग-अलग पृथ्वियाँ रौशनाते

तुमने तो दरियों की तरह तहकर
संभाल दिए हैं संदूक में पाँचों दरिया।
ये क्या किया?
धरती कौन सींचेगा?
शब्दों की आँख नम हो जाती
तेरी कविता पढ़ते हुए।
ये तो गुड़ की भेली का चूरा है
पूरी भेली कहाँ गई?
कूट-कूट चूरा करते तुमने
मिटा दिया
मेरे भेली बनाते
बापू के हाथों के निशान।
बुलडोजर चला दिया है
अपनी सड़क सपाट बनाते
मिटा दिए हैं पगडंडियों के
पैरों पर रचे राह।

अपनी कविता सीधी करते।
अब मुझे अपने गाँव, घर और
खेत का राह भूल गया है।
मीलों-मील ज्यादा चलना पड़ता है
तेरे बनाए आठमार्गी विकास के कारण।
मुझे क्या करना था
फ्लाईओवरों के जाल का
जिस पर बैलगाड़ी नहीं चढ़ती?
चारे के गट्ठरों के लिए खेत
दूर हो गए हैं मीलों।
नानी के घर से दूर हो गया दादी का घर।

तुम्हारी कविता से
ये सारा कुछ किधर गया?
कौन ले गया तेरा ईमान
शब्द विधान या कोई और बेईमान?
तुमसे उम्मीद नहीं थी
शब्दों से दर्द खींच लोगे?
आँसू बिना अंधी अँखियाँ
तुम्हारी कविता सी संवेदनहीन।

तुम किताबें लिखते जाओ।
हम वक़्त के पन्ने से पढ़ लेंगे
पीड़ाओं के दस्तावेज।
तुमने ही तो संभालने थे
रुदन के वार्तालाप
अंबर चीरती धरती की हूक।
सुबकियों की इबारत लिखनी थी।

वो तो तुमने कविता सुधारते
वैसे ही सुधार दिया
जैसे पुलिस की लाठियाँ
सुधारती थीं बोलता पंजाब
जयकारे, नारे लगाता
बकरे बनाता
बिगड़ैल सपनों का बे-लगाम काफिला।
तुम्हारी कविता में
वो अंगारे कहाँ हैं?
जो गर्मी पहुँचाते राह रौशनाते
अब तो गर्म राख का ढेर है
तुम्हारी रेशमी पन्नों वाली किताब।
खद्दर की भाषा में कौन लिखेगा?
जुलाहों का दर्द
कौन गाँठेगा मोची की फटी आहें?

दर्जी की मशीन खा गए कॉरपोरेट
दुकानों को उजाड़ गए मॉल
भट्ठियों से दाने जा छिपे पैकेटों में
थैलीशाहों के कारिंदे बन गए।
घीकुँवार-ऐलोवेरा बन कर।
जा बैठा मुनाफे के डिब्बों में
नरमा पड़ा है मंडी में
सूत अकड़ता है बाजार में
कौन है जो फ़ासले बढ़ा गया
तुम्हारे और कविता के बीच।
बाजार? सरकार? व्यापार? या
विश्व-मंडी का जग डसता संसार?
पता हो तो बताना?

हमारी चिंता न करना

बहुत मुश्किल है
उस पीड़ा को अनुवादित करना
जो उस आह में छुपी है
जो उस रेहड़ी वाले ने भरी है।
कि! सरकार जी,
स्कूल खोल दो,
हमारे घर आटा न दाल
अजब तरह काँपती है
पैरों तले जमीन जैसे भूचाल
कुछ तो करो ख्याल।

स्कूल आटा न बेचे न बाँटे
फिर इस रेहड़ी वाले को
स्कूल खुलने की चिंता क्यों है?
आप नहीं समझ सकोगे
स्कूल के बाहरी तरफ
छोले-भटूरे, आलू-टिक्की, गुड़-चावल के लड्डू और
मीठी नमकीन सेवाईयां बेचते
इस लड़के की आँख अंदर की पीड़ा।
आधी छुट्टी के वक्त यह सब बेचकर
स्कूली बच्चों के सहारे
उसके घर का चूल्हा जलता है।
माँ की आँखों के लिए दवा दरमल।

सरकार जी
विनती स्वीकार करें
इससे पहले कि कोरोना डसे
भूख डस रही है।
छोटे भाई के लिए
पैबंद लगे जूते लेने हैं
गर्मियाँ सिर पर है
बारिश-बरसात से बचने को
झुग्गी पर डालने के लिए तिरपाल लेनी है।
मेरी बहन दुप्पटा माँगती है।
बड़ी हो गई है न!

शर्म के मारे बाहर नहीं निकलती
लोग बात करते हैं।
खाली टीन पूछता हैं
हमारा पेट कब भरेगा?
मेरी तो खैर कृपा है।
मैं तो कुछ दिन चने चबा
पानी पीकर भी गुजार लूँगा।

सरकार जी
सुनिए! आपने वो टीका तो बना लिया
जो कोरोना मुक्त करता है
अब वो थर्मामीटर भी बनाओ
जो जान सके कि
दर्द की तपिश कहाँ तक पहुँची
ताकि आपको पता लगे
कि हमारे मन में क्या चलता है?

स्कूल बंद करने वाले
हुक्म करते समय सोचा करो
बच्चे कक्षाएं चढ़ने नहीं

पढ़ने आते हैं
अगली कक्षा में मुँह-जुबानी चढ़ा
आप कागज़ों का पेट तो भर सकते हो।
हमारा हरगिज़ नहीं सरकारो।
शब्द हार गए तो
आपकी कागजी लंका
पलों में ढह जाएगी।
हुज़ूर!
हमें कोरोना खाए न खाए
पर भूख जरूर खा जाएगी।
झुग्गियों जैसे
कमजोर घरों में पहले ही सिर्फ़
मुसीबतें मेहमानों सी आती है
बल्कि पक्का डेरा जमाती है।

हमारी आवाज सुनो
आपके पास तो रेडियो है, टीवी है
अख़बार है, दरबार है,
जिसको जब चाहें, जहाँ चाहें
मन की बात सुना सकते हो।
हम किस से कहें।
सिर्फ दिहाड़ी नहीं,
दिल टूट रहा है जनाब!
हमारी चिंता न करना,
स्कूल खोल दो
हम खुद कमा के खा लेंगे।

आप भी अंधे हैं

उड़ीसा से पंजाब
कमाने आए
अनपढ़ प्रवासी मज़दूर ने
चीखकर ललकारते हुए कहा
सारे देश की तरह
आप भी अंधे हैं साहब।
देखते ही नहीं हकीकत!

मेरे कंधे पर
मेरी बच्ची की लाश नहीं थी
बिकाऊ लोकतंत्र था
हर पाँच वर्ष बाद
जो नीलाम होता है कबाड़ मंडी में

हम-आप सब बिकते हैं
भुला कर फ़र्ज़
छोटी-छोटी जरूरतों के लिए
खरीदने वाले बोली लगाते हैं
ऊँची बोली लगाकर
ले जाते हैं कसाई के द्वार।
भूल-भाल कर पुराने मालिक
नए को बुलाते हैं।
लूटो-मारो,
हम फिर तैयार हैं।

मेरे कंधों पर
हर बार
कोई न कोई लाश ही क्यों होती है
आपने कभी नहीं पूछा?
किधर जा रहा था
यही न
आप तो सब जानते-समझते हैं
लाश सिर्फ जाती है मसान को
पर
नहीं जानते
कि
आती कहाँ से है?
मैं बताता हूं
छोटी ज़ेब वाले
इलाज न करवा सकने वाले घरों से आती हैं
जहाँ मै बहुत अकेला हूँ।
बेटी की लाश
कंधे पर उठा
मसान को जा रहा हूँ
अपने, आपके सब के
प्यारे वतन की तरह खामोश।
चाबुक पड़ रहे हैं।
हम बे-रोकटोक चल रहे हैं।

❐ ❐ ❐